ओ३म्

पाक्षिक

परोपकारी

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वर्ष - ५५ अंक - १ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र जनवरी (प्रथम) २०१४

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सन्-१८२४ - सन्-१८८३

ऋषि-मेला २०१३
संन्यास-दीक्षा
युवा सम्मेलन

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५५ **अंक** : १
दयानन्दाब्द: १८९
विक्रम संवत्: पौष शुक्ल, २०७०
कलि संवत्: ५११४
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११४

सम्पादक
प्रो. धर्मवीर

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

-परोपकारी का शुल्क-

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु., **त्रिवार्षिक**-५८० रु., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-२००० रु.।

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस. डालर, **द्विवार्षिक**-९५ पा./१५२ डा., **त्रिवार्षिक**-१४० पा./२२५ डा., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-५०० पा./८०० डा.।

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११७०

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

RNI. No. ३९५९/५९

परोपकारी

जनवरी प्रथम २०१४

अनुक्रम

१. समलैङ्गिकता अनुचित क्यों?	सम्पादकीय	०४
२. मनुष्य कब सुखी रहता है?	स्वामी विष्वङ्	०६
३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	राजेन्द्र जिज्ञासु	०८
४. विधर्मियों के प्रश्न व स्वामी दर्शनानन्द जी के उत्तर		१३
५. भारत की उन्नति संस्कृत से ही....	डॉ. माधुरी	१६
६. अपेक्षाएँ-किससे व कितनीं?	सुकामा	२०
७. व्याकरण सूर्य गुरु विरजानन्द दण्डी	डॉ. रामप्रकाश	२२
८. ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति	आचार्य विश्वामित्रार्य	२३
९. भौतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति से.....	चतुर्भुज प्रसाद आर्य	२८
१०. पुस्तक-परिचय		३४
११. जिज्ञासा समाधान-५४	आचार्य सोमदेव	३६
१२. संस्था-समाचार		३८
१३. प्रतिक्रिया		४०
१४. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

सम्पादकीय

समलैङ्गिकता अनुचित क्यों?

जब दिल्ली उच्च न्यायालय ने समलैङ्गिकता को वैध ठहराया था तब स्वयं को आधुनिक कहने वाले लोगों ने बड़े-बड़े जुलूस निकाले और इसे अन्तर्राष्ट्रीय सफलता के लिए उठाया गया कदम बताया था। जो भारतीय चिन्तन की परम्परा के पक्षधर थे उन्हें इस देश के लिए अनुचित प्रयास लगा था। अब सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश को निरस्त कर दिया और धारा ३७७ को वैध ठहरा दिया, तो प्रगतिशील लोगों में गुस्सा उबल रहा है। इस निर्णय के विरोध में सरकार, नेता, व्यापारी आन्दोलन के लिए तत्पर हैं। फिर इस बिन्दु पर विचार की स्थिति आ गई है।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय समलैङ्गिकता को अच्छा या बुरा बताने के पक्ष में नहीं है। उसका निर्णय तो दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा धारा ३७७ को अवैध ठहराने के विरुद्ध है। सर्वोच्च न्यायालय का मानना है इस कानून में कोई त्रुटि नहीं है, यह कानून आप को अच्छा लगता है या बुरा लगता है, यह बात बिल्कुल अलग है। न्यायालय का मानना है कि सरकार चाहे तो नया कानून ला सकती है या वर्तमान कानून को निरस्त कर सकती है। कानून बनाना या रद्द करना यह विधायिका का अधिकार क्षेत्र है।

समलैङ्गिकता के समर्थक इसे एक प्रतिगामी कदम मानते हैं, इन लोगों ने निर्णय देने वाले न्यायाधीश का व्यक्तिगत विरोध प्रारम्भ कर दिया है। निर्णय देने वाले न्यायाधीश श्री जी.एस. सिंघवी जिनकी मार्च में हार्वड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में जुड़ने की बात है, समलैङ्गिक लोग इनकी वहाँ नियुक्ति का इस आधार पर विरोध कर रहे हैं। विश्वविद्यालय से अनुरोध किया जा रहा है कि ये प्रगतिशीलता के विरोधी हैं अत: विश्वविद्यालय में सिंघवी को पढ़ाने का अवसर न दिया जाये। यह कदम औचित्य से सम्बन्ध नहीं रखता, कानून की जाँच पक्ष के हित-अहित पर निर्भर नहीं है। निर्णय जिसके भी विरोध में होगा तो क्या वह व्यक्ति विरोध नहीं करेगा? विरोध का कारण पक्षपात या तथ्यहीन हो तो विरोध करना उचित है अन्यथा तो हर पीड़ित पक्ष विरोध तो करता ही है। समलैङ्गिकता के समर्थन में जो तर्क दिये जा रहे हैं और दिये जाते रहे हैं उन पर विचार करने से भी बात स्पष्ट होगी कि इसके पीछे संवेग से अधिक सम्पत्ति का झगड़ा है। जो लोग समर्थक हैं वे सत्ता और सम्पत्ति के विस्तार में इसे सहायक मानते हैं। इसके लिए इसको एक संगठित रूप प्रदान कर रहे हैं। जितने भी तर्क इस पक्ष में दिये जाते हैं उनमें एक है यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन है। व्यक्ति का शरीर उसका व्यक्तिगत है, उसकी सम्पत्ति है। वह उसका कैसे भी प्रयोग करे, यह उसकी इच्छा है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहीं तक स्वीकार होती है जहाँ तक वह किसी को हानि नहीं पहुँचाती, परन्तु समलैङ्गिकता को मान्यता देना इसको बढ़ावा देना है, इसको मान्यता देने से नये लोगों की इस ओर प्रवृत्ति बढ़ेगी। इससे प्राकृतिक सम्बन्धों की तुलना नहीं की जा सकती। इसका सबसे बड़ा दण्ड उस नई पीढ़ी को भोगना पड़ता है, जो विद्यालयों के छात्रावासों में रहती है। वे क्षेत्र जहाँ एक लिङ्ग के व्यक्ति रहते हैं। सेना, पुलिस, मठ, मन्दिर आदि संस्थानों के अनुशासन, व्यवस्था, प्रगति इसकी वैधानिकता में निश्चय बाधा पहुँचेगी। इसकी वैधानिकता से नवयुवकों के स्वास्थ्य और शिक्षा के प्रयासों को भी धक्का लगेगा।

जो लोग मानते हैं समलैङ्गिकता सदा से रही है। भारत में ऋषि-मुनियों में समलैङ्गिकता के चित्र और उदाहरण मिलते हैं। यह कथन हेतु नहीं, हेत्वाभास मात्र है। संसार में कोई भी ऐसी बात नहीं जिसे समाज में अच्छा या बुरा न समझा जाता हो, वह समाज में नहीं हो। परन्तु समाज में उसकी उपस्थिति होना ही उसकी मान्यता का आधार नहीं बनता। संसार में चोरी, झूठ, बलात्कार, वैश्यावृत्ति, हत्या, ऐसा कौन-सा दोष है जो मनुष्य में नहीं होता। हर अच्छाई के साथ बुराई का विकल्प विद्यमान रहता है। बुराई को रोकने के लिए नियम, विधान, व्यवस्था बनती है, हर मर्यादा किसी के संरक्षण के उद्देश्य से बनाई जाती है। यदि ऐसा होना प्राकृतिक है, ऐसा मानकर स्वीकार कर लिया जाय तो समाज में किसी भी नियम की आवश्यकता नहीं है। प्रकृति ने हमारे अन्दर जितनी भी भावनायें दी हैं, वे व्यक्ति, समाज, संसार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दी हैं। ये ही भावनायें जब इन की हानि करती हैं तब इन्हें दोष कहा जाता है। अत: ये पहले से ही हैं कहने से समाज द्वारा स्वीकार्य भी हैं यह सिद्ध नहीं होता।

समलैङ्गिकता को कुछ लोग मानवाधिकार के दायरे में लाते हैं। पहले तो ये मानवाधिकार का पाखण्ड पाश्चात्य देशों की देन है, जिसकी आड में ये अपने अपराधियों को बचाते हैं। ये ईसाइयत और यूरोप अमेरिका के हितों के लिए बनाया गया कानून है। किसी भी मनुष्य को ये अधिकार नहीं है कि वह अपना या किसी का भी अहित करे। अधिकार के नाम पर कोई कैसे भी रहे कुछ भी

पहने, कुछ भी करे क्योंकि यह उसका अधिकार है, तो समस्या है जो आप उत्पन्न कर रहे हैं उसका प्रभाव केवल आप पर है या दूसरे पर भी पड़ रहा है, तो आपके व्यवहार से होने वाली प्रतिक्रिया से आप अपने को कैसे बचायेंगे। अनेक बार हम आत्म-नियन्त्रण अपने लिए और दूसरों से संभावित विपदा से बचने के लिए करते हैं। मनुष्य के मन में जो कुछ है वह उसे कर तो सकता है परन्तु परिणाम से वह अपने को नहीं रोक सकेगा इसलिए केवल एक तरफ से अधिकार की बात नहीं की जा सकती, जहाँ मेरे और दूसरे के अधिकार टकराते हैं वहीं पर नियम या मर्यादा का उदय होता है। इसको नष्ट करना ही पाश्चात्य विचार प्रवाह का उद्देश्य है।

आजकल धर्म के नाम पर यह माना जाता है। धर्म तो मनुष्य के बाद बना है उसे मनुष्य के व्यवहार व्यापार में दखल देने की आवश्यकता नहीं। समलैङ्गिकता धर्म का क्षेत्र नहीं। आज के धर्म जिसमें आप चिह्नों को धर्म समझते हैं उस सन्दर्भ में तो यह ठीक है परन्तु शास्त्रीय परम्परा तो धर्म को मनुष्य की समस्या के समाधान के लिए बनाया गया है। यदि समस्या नहीं है तो धर्म की आवश्यकता नहीं है परन्तु समस्या के समाधान का नाम ही धर्म है तो धर्म समस्या के साथ ही उत्पन्न हो जाता है। समलैङ्गिकता को वैध मानने पर होने वाली समस्याओं का समाधान बिना धर्म के नहीं हो सकता। समलैङ्गिकता सदा से होने पर भी अधिकांश में पाई जाने पर भी इसे वैध बनाने से समाज में अनैतिकता बढ़ती है अत: क्या इसे वैध मानना उचित है? मनुष्य अपने को पशु की तरह स्वतन्त्र मानता है अत: वह समझता है जैसे एक नर पशु बहुत सारे विपरीत लिंगी पशुओं के साथ सम्बन्ध रखता है यह मनुष्य का विचार होने पर विवाहेतर सम्बन्धों को मान्यता नहीं दी जाती। मान्यता न दी जाने पर भी सम्बन्ध तो रहते हैं तो उन्हें वैध किया जा सकता है, नहीं क्योंकि ऐसा करने से समाज की संरचना गड़बड़ा जाती है। अत: धर्म से इन मर्यादाओं को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है। यह तर्क निराधार है कि समलैङ्गिकता का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं।

एक और तर्क समलैङ्गिकता के पक्ष में दिया जाता है कि कानून की दृष्टि में स्त्री-पुरुष समान हैं तो उनके व्यवहार में किसी व्यवहार को ठीक और किसी को गलत ठहराने का क्या औचित्य है। कानून बराबर मानता है परन्तु स्त्री को स्त्री ही मानता है, पुरुष को पुरुष ही मानता है परन्तु यहाँ तो स्त्री को पुरुष या पुरुष को स्त्री मानने की बात की जा रही है, यहाँ समानता के अधिकार पर चोट आ रही है। समलैङ्गिकता दोनों की ही अनुचित मानी गई है चाहे वे दोनों स्त्री हों या पुरुष, यहाँ समानता के विरोध का दोष नहीं लगता।

समलैङ्गिकता के पक्ष में एक और तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि ये अल्पसंख्यक हैं अत: इन्हें सुरक्षा दी जानी चाहिए। संसार में अल्पसंख्यक कोई तर्क नहीं, यह तो सापेक्ष शब्द है। अल्पसंख्यक अच्छाई का वाचक नहीं है, संख्या का वाचक है। संख्या के कम-अधिक होने से कोई अच्छा या संरक्षणीय नहीं हो जाता। इसलिए समलैङ्गिकता के सभी तर्क इसे वैध सिद्ध नहीं कर सकते। किसी भी बात को वैध मानने पर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली जाती है। अत: चोरी, बलात्कार, हत्या, अनैतिक व्यवहार सभी कुछ संसार में सदा से है और सदा रहेगा परन्तु समाज में ये स्थिति आदर्श या अनुकरणीय नहीं मानी जा सकती। उसी प्रकार समलैङ्गिक सम्बन्ध सदा थे, हैं और रहेंगे परन्तु इसको एक आदर्श, सहज स्थिति नहीं माना जा सकता। अत: वैध करना उचित नहीं होगा।

हमारी इस प्रकृति में परमेश्वर ने ऐसा व्यवस्था की है कि यह संसार बिना रुकावट चलता रहे। मनुष्य के अन्दर भूख, प्यास, नींद उसे जीवित रखने के लिए बनाई है। उसी प्रकार काम का भाव संसार को जीवित रखने के लिए बनाया है। जीवन का निर्माण या आनन्द का अनुभव इनमें मुख्य कौन है। मुख्य है जीवन का निर्माण उसका उपाय है आनन्द का अनुभव। जीवन निर्माण के अतिरिक्त आनन्द का अनुभव विवशता या नवीनता का अनुभव तात्कालिक संवेग है परन्तु जीवन का निर्माण एक रचनाकार की सन्तुष्टि है। इसमें सामञ्जस्य तो बैठाना ही पड़ेगा। समलैंगिकता को वैध करना इस सामञ्जस्य को समाप्त करना है। शास्त्र जानते हैं काम क्या है और इसका महत्त्व क्या है? तभी तो मनु ने लिखा है कि इस संसार में जितनी भी रचना है वह सब काम का ही परिणाम है-

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कार्हिचित्।

- धर्मवीर

पतों में नवीनीकरण व संशोधन की प्रक्रिया

सभी विद्वानों व परोपकारी के सुधी पाठकों से निवेदन है कि अपना नाम, पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिन कोड सहित), दूरभाष संख्या और ई-मेल किसी भी माध्यम से भिजवाने का कष्ट करें जिससे कि परोपकारिणी सभा के वर्तमान के पतों में नवीनीकरण व संशोधन की प्रक्रिया में सहयोग मिल सके।

आध्यात्मिक चिन्तन के क्षण..........

मनुष्य कब सुखी रहता है?

- **स्वामी विष्वङ्**

संसार में मनुष्य तीन विषयों में उद्यम करते हैं। कुछ मनुष्य ज्ञानार्जन के क्षेत्र में उद्यम करते हैं, तो कुछ मनुष्य परोपकार के क्षेत्र में उद्यम करते हैं और कुछ मनुष्य भक्ति के क्षेत्र में उद्यम करते हैं। ये तीनों समुदाय वाले मनुष्यों का लक्ष्य एक ही होता है और वह लक्ष्य है आत्मा को सुखी रखना, तृप्त रखना, प्रसन्न रखना, शान्त रखना। अशान्ति से, अप्रसन्नता से, अतृप्ति से, दु:ख से सभी दूर रहना चाहते हैं। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। प्रात:काल जागरण से ले कर रात्री में निद्रा लेने तक और निद्रा काल में भी यदि स्वप्न ले रहे हों, तो भी उसी लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए उद्यम करते हुए दिखेंगे। यह मनुष्य की स्वाभाविकता है कि वह बिना उद्यम के नहीं रह सकता है। मनुष्य के इस उद्यम-शील स्वभाव ने मनुष्य को कहाँ पहुँचाया है, इस बात को सभी जानते हैं। मनुष्य ने ज्ञान के क्षेत्र में, कर्म के क्षेत्र में और भक्ति के क्षेत्र में मानो कल्पनातीत ऊँचाइयों को प्राप्त किया है।

जिस उद्यम से मनुष्य ने ऊँचाई को प्राप्त किया है, उस ऊँचाई को पाकर भी मनुष्य शान्त, प्रसन्न, तृप्त व सुखी नहीं हो पाया है। सुखी नहीं हो पाने में उसके उद्यम में कोई कमी हो, ऐसा भी नहीं है। मनुष्य ज्ञानार्जन में इतना तल्लीन है कि उसे और कुछ भी दिखाई नहीं देता है। मनुष्य ने ज्ञान को पाने में इतना उद्यम किया है कि उसके पास ज्ञान ही ज्ञान है। परन्तु उससे तृप्त नहीं है और भी अलग-अलग ज्ञान को पाने में उद्यम-शील है। उस उद्यम को सफल बनाने के लिए कितना ही तप करना पड़े करता है, जितना भी समय लगाना पड़े लगाता है, उसके लिए कितना भी त्याग करना पड़े करता है। जो भी करना पड़े, सब कुछ करता है, जिसके बदले में ज्ञानार्जन हो अर्थात् जिस किसी भी प्रकार से ज्ञान प्राप्त हो, वह सब कुछ करके ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परिणाम स्वरूप इतना ज्ञान एकत्रित किया जो असीमित प्रतीत होता है, फिर भी ज्ञान की भूख समाप्त नहीं होती और यह ज्ञान की भूख समाप्त भी नहीं हो सकती। अनन्त ज्ञान को सीमित जीवन-यापन करने वाला मनुष्य कैसे पा सकता है? जो मनुष्य ज्ञान को पाने में सारी शक्ति, सारा सामर्थ्य, सारी योग्यताएँ न्योछावर कर दे, तो परोपकार और भक्ति के लिए उसके पास न तो शक्ति बची है, न साामर्थ्य बचा है और न ही योग्यताएँ। इसलिए इतने ज्ञान के भण्डार को रखता हुआ भी मनुष्य शान्त, तृप्त, प्रसन्न व सुखी नहीं हो पाया।

जिस प्रकार से ज्ञानार्जन के क्षेत्र में मनुष्य समुदाय ने जिन ऊँचाइयों को प्राप्त किया है, उन ऊँचाइयों को पा कर तो मनुष्य को सुखी होना चाहिए। परन्तु पूर्ण सुखी नहीं हो पाया है, इसके कारणों का पता लगाना चाहिए और उन्हें दूर भी करना चाहिए, तभी मनुष्य पूर्ण रूप से सुखी हो सकता है। जिस प्रकार से एक मनुष्य समुदाय ज्ञानार्जन करने में उद्यम-शील है, उसी प्रकार दूसरा मनुष्य समुदाय परोपकार करने में उद्यम-शील है। यद्यपि संसार में अरबों मनुष्य हैं, परन्तु सभी परोपकार नहीं करते हैं, फिर भी परोपकार करने वालों का समुदाय भी लम्बा-चौड़ा है। परोपकार करने के लिए हृदय का विशाल होना आवश्यक है। दूसरों को सुखी देखना, सुखी करना ही परोपकार का उद्देश्य है। मनुष्य परोपकार अनगिनत प्रकारों से (सेवा) करता है। कोई चिकित्सा से, कोई भोजन से, कोई पानी से, कोई वस्त्रों से, कोई विद्या से, कोई शरीर से, कोई वाणी से, तो कोई मन से भी सेवा करता है। परोपकार करने वाले ऐसे-ऐसे हैं जो न दिन देखते हैं, न रात देखते हैं, न स्थान देखते हैं, न अवसर देखते हैं। बस उपकार करना ही उनका उद्देश्य होता है। वे स्वयं के जीवन के कर्त्तव्यों को भी भुला कर अन्यों के उपकार में लगे रहते हैं।

दिन-रात एक करके उपकार करते हुए भी जीवन में वैसा सुखी, प्रसन्न, तृप्त, शान्त नहीं होते हैं, जैसा वे चाहते हैं। एक-दो प्रकार के उपकार ही कर रहे हों, ऐसा भी नहीं। अलग-अलग प्रकार के उपकारों को अपनाया जा रहा है और उपकारों के प्रकारों को और बढ़ाया जा रहा है। किन्तु और कितने बढ़ाएँ, वैसे तो बढ़ाने को और बढ़ाया जा सकता है, परन्तु उन्हें करने के लिए समय को नहीं बढ़ाया जा सकता क्योंकि समय तो २४ घण्टों का ही है। इतना सब कुछ करते हुए भी मनुष्य तृप्त नहीं हो पा रहा है। यद्यपि महान् उपकार कर-करके बहुत सारी ऊँचाइयों को तो पा लेते हैं परन्तु उन ऊँचाइयों को पा कर भी पूर्ण सुखी होने से वञ्चित रहते हैं। ऐसा क्यों होते हैं? इसके कारणों को जान कर-समझ कर, उन कारणों को दूर भी करना चाहिए, जिससे मनुष्य सुखी हो सके।

जिस प्रकार से ज्ञानार्जन करने वालों का समुदाय ज्ञान से युक्त हो कर भी दु:खी, अतृप्त और अशान्त है और जिस

प्रकार से परोपकार करने में तत्पर परोपकारी-जन अप्रसन्न, अशान्त रहते हैं। उसी प्रकार और भी कोई ऐसा मनुष्य समुदाय है, जो अशान्त रहता हो, इस पर विचार करने से पता चलता है कि हाँ, और भी एक ऐसा मनुष्य समुदाय है, जो ऊपर से शान्त, प्रसन्न और तृप्त तो दिखाई देता है परन्तु वास्तव में वह समुदाय भी दु:खी है। वह कौन-सा समुदाय है, जो दु:खी है? समाधान तो सरल है परन्तु मनुष्य सरलता से स्वीकार नहीं कर पाता है। कौन-सा समुदाय है, जिसको मनुष्य सरलता से स्वीकार नहीं करता है? वह समुदाय है भक्ति करने वालों का समुदाय, जो भक्ति में डूबा हुआ है। संसार में ज्ञानार्जन करने वालों की कमी नहीं है, लाखों, करोड़ों मिलेंगे। इसी प्रकार उपकार करने वालों की भी कमी नहीं है। परन्तु भक्ति करने वाले बहुत कम मात्रा में दिखाई देते हैं, क्योंकि भक्ति-मार्ग बहुत कठिन है। इसलिए विरले मनुष्य ही भक्ति-मार्ग को अपनाते हैं और यह भक्ति-मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा कहा जाता है, फिर भक्ति-मार्ग में चलते हुए मनुष्य दु:खी क्यों होते हैं? नहीं-नहीं, भक्ति-मार्ग में चलने वाले दु:खी नहीं हो सकते। ऐसा भला हो सकता है, जो भगवान् के शरण में जा कर दु:खी हो? कदापि नहीं। इस धारणा के कारण ही लोगों को विश्वास नहीं हो पाता कि भक्ति-मार्ग में भी मनुष्य दु:खी हो सकता है।

स्वीकार न करने के पीछे बहुत सारे कारण दिखते हैं- मनुष्य दिन भर जप में लगा हुआ है, ध्यान में घण्टों बैठा हुआ है, गम्भीर मौन में-अदृश्य मौन में है, घोर तपस्या कर रहा है, सारी सम्पत्तियाँ छोड़ चुका है या किसी को दान में दे दिया है, ईश्वर-समर्पण में ही जीवन बिता रहा है, एकान्त सेवन कर रहा है, सांसारिक-लोगों से भिन्न है, गम्भीर है, विषय भोगों की ओर आकर्षित नहीं होता इत्यादि अनेकों कारण हैं, जिन को देख कर जनता उन भक्ति-मार्गियों को सब से श्रेष्ठ और सुखी स्वीकार करती है। इसलिए भक्ति-मार्गियों को दु:खी स्वीकार करने में संकोच होता है, आत्मा अन्दर से स्वीकार नहीं करता। इसलिए संसार में प्रचलित है कि भक्ति-मार्ग में चलने वाले दु:खी नहीं होते। वास्तव में भक्ति-मार्गी सुखी होते हैं या दु:खी इसका विश्लेषण तो अवश्य होना चाहिए। चूँकि ज्ञान-मार्गियों तथा कर्म-मार्गियों के जीवन का विवेचन करके उन्हें दु:खी बताया गया अत: भक्ति-मार्गियों के जीवन का भी विवेचन होना चाहिए।

एक पक्ष में निर्णय न ले कर सभी पक्षों को ध्यान में रख कर ही समाधान करना चाहिए। जहाँ यह कहा जा रहा है कि ज्ञानार्जन में उद्यम करते हुए जो केवल ज्ञान-मार्गी बन कर जीवन-यापन करते हैं, वे यह नहीं समझ पाते हैं कि उनको जो ज्ञान प्राप्त हो रहा है, वह ज्ञान कितने लोगों के पुरुषार्थ के कारण प्राप्त हो रहा है। करोड़ों लोगों के सहयोग से ज्ञान-ग्रहण करते हुए वे दूसरों का उपकार नहीं कर पाते हैं और जिस परमेश्वर के द्वारा प्रदत्त साधनों के माध्यम से ज्ञानार्जन हो रहा है, उस परमेश्वर की भक्ति नहीं करते। ऐसी स्थिति में एकांगी जीवन-यापन करते हुए कैसे सुखी हो सकते हैं? इसी प्रकार कर्म-मार्ग में चलते हुए जो लोग परोपकार कर रहे हैं, वे केवल कर्म ही करते जाये और ज्ञानार्जन न करे, तो कर्म अधिक नहीं कर पायेंगे और उत्कृष्ट स्तर के कर्म भी नहीं कर पायेंगे। क्योंकि उत्कृष्ट ज्ञान से ही उत्कृष्ट कर्म कर सकते हैं और कम समय में अधिक कर्म हो सकते हैं। कर्मों के साथ जहाँ ज्ञानार्जन करना आवश्यक है, वहाँ परमेश्वर की भक्ति करना भी आवश्यक है, क्योंकि ईश्वर के द्वारा किये हुए उपकार को भी मनुष्य को स्वीकार करना होता है और वह भक्ति के माध्यम से ही स्वीकार किया जाता है। इसलिए केवल कर्म-मार्गी दु:खी रहते हैं, ऐसा कहा गया है।

जिस प्रकार केवल ज्ञान-मार्गी और कर्म-मार्गी दु:खी रहते हैं, उसी प्रकार केवल भक्ति-मार्गी भी दु:खी रहते हैं। क्योंकि बिना ज्ञानार्जन के उचित कर्म नहीं होते हैं और बिना उचित कर्मों के भक्ति, भक्ति के रूप में नहीं हो पाती है। इसलिए मनुष्य अपूर्ण रहता है और अपूर्णता से ही मनुष्य इच्छित उद्यम नहीं कर पाता है और उद्यम अपेक्षित विधि से न होने से उसका परिणाम भी अपेक्षा से कम मिलता है। यह मनुष्य का स्वभाव है कि कम परिणाम में दु:खी ही होता है। इसलिए भक्ति-मार्गी भी दु:खी होता है, ऐसा कहा गया है। यहाँ पर कोई व्यक्ति ऐसा न समझे कि ज्ञान-मार्गी, कर्म-मार्गी व भक्ति-मार्गी बनना गलत है। हाँ केवल ज्ञान-मार्गी, कर्म-मार्गी व भक्ति-मार्गी बनना गलत है। इसलिए तीनों का समन्वय करना चाहिए। जहाँ ज्ञानार्जन में उद्यम करना है वहाँ ज्ञानार्जन करें और जहाँ परोपकार करने में उद्यम करना है, वहाँ परोपकार करें और जहाँ भक्ति करने में उद्यम करना है, वहाँ भक्ति करें। परन्तु केवल एक मार्ग में ही अटके न रहें, तीनों मार्गों को बारी-बारी से साथ ले कर चलें अर्थात् जहाँ ज्ञान की आवश्यकता हो वहाँ ज्ञानार्जन में उद्यम करने में पीछे न हटे ऐसा ही उपकार में और ऐसा ही भक्ति में करें। इस प्रकार तीनों (ज्ञान, उपकार, भक्ति) क्षेत्रों को अपना विषय बना कर चलने से मनुष्य सुखी, तृप्त, प्रसन्न और शान्त हो सकता है।

ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

कुछ तड़प-कुछ झड़प

- राजेन्द्र जिज्ञासु

पं. लेखराम जी का ऐतिहासिक पत्रः- वीर शिरोमणि पं. लेखराम जी ने न जाने कितने पत्र लिखे होंगे। आज आर्यसमाज के पास उस युग पुरुष के केवल दो ही पत्र हैं। एक पत्र तो मूल रूप में सभा के पास सुरक्षित है। इसे श्री धर्मवीर जी ने खोजकर दिया। यह परोपकारी में कई वर्ष पूर्व छपा था। वहाँ से लेकर हमने रक्तसाक्षी पं. लेखराम ग्रन्थ में उसका फोटो दे दिया। दूसरे पत्र की खोज इन पंक्तियों के लेखक ने की और इसे किसी पुस्तक में उद्धृत कर दिया परन्तु पूज्य लक्ष्मण जी के ग्रन्थ में इसे देने की बात लिखकर भी न दे पाये। इसका हमें बड़ा दुःख है।

जिस-जिस पत्रिका में यह पत्र छपा था, वे अङ्क भी तब हमें न मिले। ग्रन्थ प्रेस में पहुँचते ही वह पत्र मिल गया। मूल पत्र तो अब क्या मिलेगा। 'आर्य समाचार' मेरठ के सन् १८८९ के एक अङ्क से गवेषकों, इतिहासज्ञों तथा सब ऋषि भक्तों के कल्याणार्थ 'परोपकारी' इस पत्र को प्रकाशित कर रहा है। इससे प्राणवीर पं. लेखराम जी की ऋषि भक्त व सत्यनिष्ठा का परिचय मिलता है। जब पंजाब सभा ने अथक गवेषक कर्मण्यता की मूर्त्ति पं. लेखराम जी को ऋषि-जीवन की सामग्री की खोज व लेखन का कार्य भार सौंपा तब पण्डित जी ने ऋषि-दर्शन करने वाले सब सज्जनों से इस पत्र द्वारा यह निवेदन किया था:-

''स्वामी जी की स्वानेह उमरी

मेरे कृपालु सम्पादक जी आर्यसमाचार नमस्ते! मैंने ग्यारह (११) दिसम्बर सन् १८८८ से ईश्वर-आश्रय होकर श्री स्वामी जी महाराज की स्वानेह उमरी (जीवन चरित्र) का कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आदेशानुसार आरम्भ कर दिया है अर्थात् मैं ग्यारह दिसम्बर सन् १८८८ प्रातः की गाड़ी में लाहौर से प्रस्थान करके मथुरा पहुँचूँगा। वहाँ से कार्य आरम्भ करूँगा। मेरे नाम सकल पत्र व्यवहार निम्न पता पर होना चाहिये। उनके जीवन से सम्बन्धित सकल वृत्तान्त तथा घटनायें एकत्र करना आप महानुभाव जानते ही हैं कि कैसा कठिन कार्य है परन्तु कार्य केवल आर्य सज्जनों के भरोसा पर ही उठाया गया है। और समाजों से ही इसके बारे में बहुत कुछ सहयोग की आवश्यकता है।

इसलिये सब बन्धुओं से विनती है कि जिस समय की तथा जिस प्रकार की तथा जिस नगर अथवा वन अथवा तीर्थ इत्यादि के स्वामी जी के वृत्तान्त के विषय में कुछ पता हो उनकी मुझे जानकारी दी जाये। मैं यथा सम्भव आज से दो वर्ष की अवधि में सारे आर्यावर्त्त का भ्रमण करूँगा। और जहाँ-जहाँ किसी प्रकार का वृत्तान्त जिस सज्जन के पास पता मिलेगा, मैं उपस्थित होकर लेखबद्ध कर लूँगा **तथापि सावधानी शर्त है।** आप सज्जनों से आशा है कि मेरी प्रार्थना पर विचार करें।

दस दिसम्बर १८८८ निवेदन लेखराम आर्य मुसाफ़िर द्वारा मन्त्री आर्यसमाज मथुरा नगर[१]''

पाठक ध्यान दें कि पं. लेखराम जी ने मथुरा से खोज आरम्भ की। 'आर्य मर्यादा' जालन्धर में किसी ने यह गप्प परोस दी कि यह कार्य जालन्धर से आरम्भ किया गया। पण्डित जी के लेख से बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

सत्यनिष्ठ लेखराम जानकारी देने वाले को सावधानी की ब्रेक लगाते हैं। वे मनगढ़न्त, निराधार मिथ्या बातें एकत्र करने नहीं निकले थे। पण्डित जी पहले ही 'आर्य मुसाफ़िर' के नाम से विख्यात थे। ऋषि जीवन की सामग्री से वे आर्य के रूप में जाने गये, यह एक निराधार कल्पना है। इस पत्र में आपके नाम के साथ 'आर्य मुसाफ़िर' ये दो शब्द जुड़े हुए हैं।

कुछ जानते हो तो आगे आओः- एक मुसलमान भाई श्री अहमद आर्यसमाज के शास्त्रार्थों पर शोध कार्य कर रहा है। इस सुपठित युवक ने परोपकारिणी सभा से सम्पर्क करके मार्गदर्शन व सहयोग माँगा है। श्री डॉ. धर्मवीर जी ने उस भाई को हर प्रकार की सहायता का आश्वासन देते हुए कहा है कि हमारी अगली पीढ़ी में इस विषय के युवा विद्वान् श्री राजवीर जी से मिलकर भी आप लाभ उठा सकेंगे। कुछ वर्ष पूर्व एक विदेशी मुसलमान युवक ने श्री अजय जी संचालक गोविन्दराम हासानन्द द्वारा मेरे साथ पत्र व्यवहार करके इसी विषय में सहायता माँगी थी। उसी युवा विद्वान् की चाहना से इस विनीत ने श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी पर एक शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखकर छपवा दिया। स्वामी दर्शनानन्द जी तथा पं. लेखराम जी पर भी एक-एक पुस्तक छपवा दी। उस पर हमारे लेखों व साहित्य का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

तब उस सज्जन ने आर्य मुसाफिर, मुबाहिसा आदि पुराने पत्रों के कुछ अंक देखने की उत्कट इच्छा प्रकट की। परोपकारी द्वारा सब समाजों, सभा संस्थाओं तक उसका निवेदन पहुँचाया गया कि जिसके पास कुछ हो वह आगे आकर उसका सहयोग करे। तब सबने चुप्पी साधे रखी। हमने उस भाई को लिखा जो आप चाहते हैं, वह सब कुछ दिखा देंगे- और भी बहुत कुछ। [जिसका आपको पता नहीं] आकर देख लें व लाभ उठायें।

इस नये युवक की माँग आर्यसमाज के लिए एक चेतावनी है। डींग मारने वाले, परोपकारी पत्र तथा परोपकारिणी सभा को कोसने में लगी एक पंचायत से हमारी कर जोड़ विनती है कि अब आपके पास कुछ है तो आगे आओ। कुछ लाओ। कुछ दिखाओ। जमायते इस्लामी ने पुनर्जन्म खण्डन निकाल कर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थप्रकाश, वेद, दर्शन और गीता पर हल्ला बोला। आप लोगों ने अखण्ड मौन धार लिया। कोटा के हमारे पुराने प्रेमी श्री वेदप्रिय जी ने अजमेर आकर इस लेखक से कहा, ''अब पं. शान्तिप्रकाश जी के बाद हमारे पास आप ही हैं। इसका उत्तर आप दीजिये। कुछ और सज्जनों ने भी ऐसा ही कहा। हमने उस आक्रमण का समुचित उत्तर दिया। श्री धर्मवीर जी ने सभा की ओर से वह उत्तर उन्हें भिजवा दिया। आज तक फिर किसी को उसका प्रतिवाद करने का साहस नहीं हुआ। सत्यार्थप्रकाश तथा वेद पर भी करारा वार प्रहार उसी पत्रिका में किया गया। उसका भी उत्तर देकर आक्रमणकारी की बोलती बन्द की गई।

श्री खुशवन्तसिंह ने लाखों लोगों के सामने गायत्री तथा ओ३म् नाम की खिल्ली उड़ाई। आप लोगों को तब सत्यार्थप्रकाश की रक्षा करने का समय न मिला। परोपकारी ही मैदान में उतरा। सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर मुसलमान उन्मादी यदा-कदा वार करते आ रहे हैं। श्री सत्येन्द्र सिंह जी आर्य की प्रेरणा से हमने विश्वभर के मुस्लिम लेखकों के साहित्य के उद्धरण व प्रमाण देकर चौदहवें समुल्लास में ऋषि की समीक्षा के एक-एक बिन्दु की पुष्टि करके इस रोग की सदा के लिए जड़ काट डाली है। किसी को हमारे ग्रन्थ के खण्डन की हिम्मत नहीं हुई। सारे देश में इसका प्रचार हो चुका है। विरोधियों के ऊपर हमने ऋषि की छाप लगा दी है। 'चौदहवीं का चाँद' जैसी मौलिक पुस्तक से प्रेरणा पाकर हमने चौदहवें समुल्लास पर ऐसा ग्रन्थ तैयार कर दिया है कि इस प्रकार की कोई पुस्तक पहले किसी ने नहीं लिखी।

आर्यसमाज में इस समय इस्लामी साहित्य की जानकारी प्राप्त कर उस पर अधिकार पाने की डुगडुगी तो कई एक युवक बजाते देखे गये परन्तु इसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। राजवीर जी को भी अभी बहुत कुछ करना है। अमरनाथ जी बहुत कुछ कर सकते थे परन्तु......।

परोपकारिणी सभा के प्रयास से कुछ काम इस दिशा में हुआ तो है परन्तु अभी मनज़िल दूर है। यह मत समझो कि कुरान की आयतें सुना देने वाला कोई व्यक्ति पं. शान्तिप्रकाश जी व पं. देवप्रकाश जी का स्थान ले सकता है। उन जैसा व्यापक व गहन अध्ययन तथा तप भी तो कोई करे। निराशावादी तो मैं हूँ नहीं परन्तु यथार्थ स्थिति को जानते हुए एक चेतावनी दे दी है। समय रहते सम्भल जाओ। अलभ्य साहित्य तथा अभिलेखागार की दुहाई देने वाले किसी नौसिखया स्कॉलर को 'जवाहिरे जावेद', उपाध्याय जी, दर्शनानन्द जी, पं. मनसाराम जी को उद्धृत करते नहीं देखा गया। बिना पढ़े, बिना जाने डॉ. गुलाम जेलानी की चर्चा करने से आर्यसमाज की साख नहीं बन सकती।

महाकवि हाफ़िज़ की वैदिक सोचः- पं. गुरुदत्त जी विद्यार्थी के एक शिष्य के एक अलभ्य लेख के आधार पर पण्डित जी की जीवनी में हमने यह घटना दी है कि पण्डित जी ने अपने पास केवल आर्य साहित्य रखकर शेष सब पुस्तकें दूसरों को दे दीं। फारसी के महाकवि हाफ़िज का दीवान तथा अमरीकन विद्वान् एण्ड्रयूज़ का साहित्य एक अपवाद था। हाफ़िज के दीवान की अन्त:साक्षी के आधार पर पण्डित जी यह मानते थे कि हाफ़िज पर योगदर्शन की रंगत थी। हमें जब शहरयार शीराज़ी ने दीवाने हाफ़िज भेंट स्वरूप भेजा तो इसको बार-बार पढ़ने पर हाफ़िज़ के दीवान में भी सुरा तथा सुन्दरियों की अलकों पुलकों की बार-बार चर्चा देखकर मन शङ्कित हुआ। पं. गुरुदत्त जी योगदर्शन के सूत्र का अनुवाद हाफ़िज के दीवान में पाकर उस पर मुग्ध हो गये- वह अपने स्थान पर ठीक है। परन्तु दीवाने हाफ़िज़ में निम्न पंक्तियाँ पढ़कर हमें ऐसा लगा कि सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशन से बहुत पहले वहिश्त के सम्बन्ध में हाफ़िज़ की आपत्तियाँ व शङ्कायें भी वही थीं जो महर्षि दयानन्द जी महाराज की थीं। वे पंक्तियाँ ये हैं:-

सोहबते हूर न ख़ाहम कि बवद ऐन कसूर,
बा ख़्याले तो अगर बा दिगरे परदाज़म।[२]

अर्थात् मैं हूर की संगति नहीं चाहता इसलिये कि यह भारी दोष या पाप होगा। तेरे ध्यान के होते हुए यदि मैं किसी अन्य के विचार में निमग्न होता हूँ तो यह अनुचित ही होगा।

इस पद्य पर या हाफ़िज़ के इस वेदोक्त चिन्तन पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। वे मौलाना लोग जो हूरों के बारे में आयतों की समीक्षा के लिए ऋषि को जली-कटी सुनाते आये हैं उन्हें दीवाने हाफ़िज़ के वेदोक्त कथन का या तो स्वीकार करना होगा या फिर इस पर भी अपनी निब घिसानी होगी। सत्य तो सत्य ही रहेगा।

इतिहास प्रदूषण की खुली छूटः- बहुत पहले भी किसी ने हमें 'पटियाला राजद्रोह के अभियोग' विषयक आर्य जगत् में छपे एक भ्रामक निराधार लेख के बारे में पत्र लिखकर प्रतिक्रिया माँगी थी। अब वह लेख हमारे पास पहुँचा है। यह लेख उक्त पत्रिका के १३ नवम्बर सन्

२००५ के अंक में पृष्ठ सात पर छपा था। इस लेख का लेखक कौन है, यह पता करना कठिन है। लगता है कि श्री हरबंसलाल कपूर था तथा पटियाला के डी.ए.वी. स्कूल के तत्कालीन प्रिंसिपल का मिला जुला पुरुषार्थ है। दोनों की जानकारी का मुख्य स्रोत हिसार के प्रतापसिंह जी शास्त्री की एक पुस्तक है। वैसे पटियाला से प्राप्त रिकॉर्ड की भी दुहाई दी गई है।

लेख में सत्य तथ्यों की हत्या कर दी गई है। पटियाला केस और स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम लेकर इतिहास का उपहास उड़ाया गया है। इतिहास प्रदूषण की आर्यसमाज में अब खुली छूट है। पत्रों के पास, सभाओं के पास कुशल, अनुभवी और योग्य पत्रकार सम्पादक रहे नहीं। हर कोई पं. लेखराम, महात्मा मुंशीराम, पं. इद्र, महाशय कृष्ण व पं. नरेन्द्र नहीं हो सकता। लीजिये इस लेख की मनगढ़न्त गप्पें पढ़िये:-

१. सत्यार्थप्रकाश जहाँ भी मिला, जब्त कर लिया गया। यह शुद्ध गप्प है। सत्यार्थप्रकाश की ज़ब्ती तब कोई विषय नहीं था। सनसनी फैलाने वालों ने गत कुछ वर्षों में यह भ्रामक प्रचार कर दिया।

२. लिखा है कि ७६ निष्ठावान् आर्यसमाजी वीरों पर अभियोग चलाया गया। यह संख्या भी मनगढ़न्त है। लेखक कुछ जानता ही नहीं।

३. जो नाम दिये गये हैं उनके बारे में कुछ न कहा जाये तो ठीक है। श्री महात्मा मुंशीराम जी लिखित ग्रन्थ व मेरी पुस्तक में सब नाम दिये हैं। इस अभियोग के जो हीरो थे लाला नारायणदत्त जी, राजा ज्वालाप्रसाद, रामाँ के वीर रौनक सिंह और आर्यसमाज के शूरवीर सेवक खण्डू का नाम तक लेख की सूची में नहीं। प्रतापसिंह जी लेख तो लिख सकते हैं परन्तु इतिहास शास्त्र उनकी खोज का भार नहीं सह सकता। वीर रौनक सिंह का मुनियों-सा चमकता मुखड़ा, लम्बी-चौड़ी काया मैं भूल नहीं सकता। आपने चण्डीगढ़ में ओ३म् ध्वजा कर में ले कर मेरे साथ सत्याग्रह किया था। वह स्वामी श्रद्धानन्द जी व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के नेतृत्व में हर आन्दोलन में जेल में गये।

लेखक ने राजद्रोह के इस प्रथम अभियोग व दमनचक्र को डी.ए.वी. से जोड़ने की कुशलता दिखाई है। इसे यह नहीं पता कि तब पटियाला राज्य में प्रादेशिक सभा व डी.ए.वी. का कोई समाज था ही नहीं। महात्मा मुंशीराम चलकर राय बहादुर लालचन्द प्रधान डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी के घर गये और भारी फीस देने की बात कहकर आर्यों का केस लड़ने को कहा। उसको सरकार हाईकोर्ट का जज बना रही थी सो उसने फीस लेकर भी केस न लड़ने की दृढ़ता दिखाई। इसी प्रकार प्रादेशिक के अधिकारी भक्त ईश्वरदास ने भी फीस लेकर केस लड़ने से इन्कार कर दिया। उसके भाई को सरकार सैशन जज बना रही थी। उसने भी सरकार भक्ति व परिवार भक्ति पर ईश्वर भक्ति, समाज भक्ति को वार दिया। यह सच्चा इतिहास ये 'इतिहासकार' क्यों पचा जाते हैं। लाला लाजपतराय जी व लाला द्वारकादास ने उस अग्नि परीक्षा में समाज का साथ दिया।

यह कहानी भी मनगढ़न्त है:- एक बार एक निराधार कहानी चल पड़े तो फिर उसका प्रतिवाद कर देने पर भी वह नहीं मरती। एक आर्य संन्यासी ने प्रेरक जीवन के पृष्ठ १३६ पर आरम्भ में ही लाला लाजपतराय जी के पिता के मस्जिद में जाकर मुसलमान बनने की एक रोचक हदीस लिखी है। तब पत्नी ने पैर पकड़ लिये- गोद में बैठे बच्चे (लाजपत) ने रोते हुए अपने पिता को खींचकर धर्मच्युत होने से बचा लिया। यह हदीस लाला जी ने या उनके किसी जीवनी लेखक ने नहीं लिखी। मेरे पास लाला राधाकिशन जी लिखित उनका स्वलिखित जीवन परिचय है। लाला जी के भाई का लिखा एक ग्रन्थ भी पढ़ा है। यह हदीस किसी ने नहीं दी। किसने यह हदीस गढ़ी? संन्यासी ने पुस्तक में विषय तो अच्छे चुने परन्तु इतिहास की दृष्टि से सब कुछ क्रमहीन है।

ऋषि-जीवन और हमारे हुतात्मा:- वीर भगतसिंह के नैशनल कॉलेज के एक गुरु श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार इतिहास विषय की गुत्थियाँ लेकर समाधान के लिये स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के पास लाहौर में आते रहते थे। स्वामी जी उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए आर्य में इतिहास पर लेख देते रहते थे। ऐसे ही प्रसिद्ध इतिहासकार श्री पृथ्वीसिंह मेहता स्वामी जी का इतिहासकार के रूप में बहुत सम्मान करते थे। सिख विद्वान् प्रिं. गंगासिंह जी भी उनकी इतिहास पर पकड़ को नमन किया करते थे। स्वामी जी ऋषि-जीवन को पढ़ने से बढ़कर उस पर मनन चिन्तन करके ऋषि के आचार व्यवहार का अनुचरण करने पर बल दिया करते थे। उन जैसी ऋषि जीवन की कथा हमने फिर कभी सुनी ही नहीं। स्वामी सर्वानन्द जी तथा पं. शान्तिप्रकाश जी की कथाओं में उनकी कुछ रंगत होती थी।

आर्यसमाज ने अपने हुतात्माओं को क्या महत्त्व दिया। हिन्दी के सिवा किसी भाषा में पं. लेखराम आदि के विस्तृत जीवन क्या मिलते हैं? सिखों ने मुझे विदेश से Sikh Maryrs (सिख शहीद) नाम की एक पठनीय प्रेरक पुस्तक भेजी। इतिहास एक अन्तहीन विषय है। जीवन लेखक से भी भूल हो सकती है। जाने-अनजाने हो जाने वाली प्रत्येक भूल का, मुद्रण दोष का सुधार होना

चाहिए। लक्ष्मण जी के ग्रन्थ के प्रथम भाग में हमारी असावधानी से कुछ प्रूफ़ की अशुद्धि रह गई। एक पाद टिप्पणी में मोरबी के राजा श्री बाघ तथा उनके पुत्र विषयक दो वाक्यों में गड़बड़ हो गई।

श्रद्धाञ्जलियों वाले तीसरे भाग में तत्कालीन स्रोतों से मिली कुछ सर्वथा नई सामग्री हम देंगे। उदयपुर में एक भाई ने उदयपुर की ऋषि की दिनचर्या के बारे में प्रश्न पूछा तो हमने कहा दूसरे भाग में पढ़ लेना। जब उनके विशेष अनुरोध पर हमने महाकवि श्यामलदास जी लिखित उस समय की महाराज की सब दिनचर्या सुना दी तो वह भाई गद्‌गद् हो गये। महाकवि श्यामलदास जी ने ही तो ऋषि को मेवाड़ का निमन्त्रण दिया था। उनके द्वारा लिखित घटनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। महाकवि तो विश्व प्रसिद्ध राजस्थानी इतिहासकार हैं। वह परोपकारिणी सभा के संस्थापक मन्त्री थे। महाराणा सज्जनसिंह जी संस्थापक प्रधान थे। हमने इस ग्रन्थ में सर सैयद अहमद खाँ तथा राजनारायण बसु आदि सबको स्थान दिया है परन्तु विशेष महत्त्व तो ऋषि के मिशन के जो स्तम्भ रहे उन्हीं को दिया है। हमारे प्रयास की यह भी एक विशेषता है।

विदेश से पूछा गया एक प्रश्नः- परोपकारी परिवार के एक निष्ठावान् धर्मप्रेमी हमारे कृपालु आर्यवीर श्री अशोक आर्य जी ने हमें पूछा है कि अग्निवीर के वैबसाईट से आपका क्या सम्बन्ध है? यह भी बताया गया कि वे आपका फोटो दिखाते रहते हैं। श्री अशोक जी ने उनसे हमारा सम्बन्ध समझकर इस वैबसाईट के भागीदारों या चलाने वालों को प्रचुर आर्थिक सहयोग दिया। जब गत बार हम केरल गये तब भी पता चला कि वे लोग धन संग्रह कर रहे हैं। हमारे नाम की दुहाई देकर वहाँ भी भ्रमित किया कि जिज्ञासु जी हमारे साथ हैं।

हम ने उन्हें बता दिया कि हमारा उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं। संजीव किस प्रयोजन से आर्य समाज से जुड़ा? यह भगवान् जाने या वही बता सकता है। हमने भी उसको आर्य मानकर प्रोत्साहित किया परन्तु दो वर्ष पूर्व शुद्धि के नाम पर उनकी लम्बी-चौड़ी बातों में आकर उनके एक कार्यक्रम में भाग लेने की भूल कर बैठे। सच्चाई सामने आती गई फिर जो बातें अशोक जी ने सुनाईं, बताईं वे कुछ औरों से भी सुनीं।

जो व्यक्ति कुछ समय पूर्व एकेश्वरवाद का पक्षधर था, जड़पूजा, गुरुड़म और जातिवाद का विरोधी था वह एकदम मूर्तिपूजकों के साथ मिलकर अपने वैबसाईट से अवैदिक मान्यताओं, वेद विरोधी साहित्य के व्यापार में उत्साह से लगा है। कुछ तो रहस्य होगा ही। स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम लेकर शुद्धि आन्दोलन को व्यापक रूप देने के सपने देखने वाले जिस मायाजाल में फंस चुका है हमें इधर-उधर से उसके संकेत मिल रहे हैं। हमारा तो केवल ऋषि दयानन्द जी मिशन से सम्बन्ध है। संजीव के व्यापार या अग्निवीर वैबसाईट से हमारा दूर-दूर का भी सम्बन्ध नहीं। उसने हमसे हमारी पुस्तकों की सी.डी. माँगी थी। पता नहीं क्या प्रयोजन था। हम समझ न पाये।

टिप्पणियाँ

१. द्रष्टव्य आर्यसमाचार उर्दू मासिक मेरठ, पृष्ठ २३७, २३८, मार्गशीर्ष १९४५ का अंक।

२. यह पद्य रदीफ़ मीम में दिया गया है।

वेद सदन, अबोहर-१५२११६ (पंजाब)

ई-मेल द्वारा परोपकारी निःशुल्क

परोपकारी के पाठकों को प्रसन्नता होगी कि अब परोपकारी ई-मेल द्वारा भी भेजी जा रही है। परोपकारिणी सभा की वेब-साइट पर तो परोपकारी पहले से ही निःशुल्क उपलब्ध है। विश्व में कहीं भी कोई भी इसे वेब-साइट पर पढ़ सकता है। इसके साथ ही अब यह सुविधा भी उपलब्ध कराई गई है कि परोपकारी आपके पास ई-मेल द्वारा पहुँच जाये। इससे यह पत्रिका शीघ्र व अधिक सुन्दर रूप में आप तक पहुँच सकेगी। आप जहां भी रहें, कभी भी पढ़ना चाहें, यह आपके पास रहेगी। डाक की अव्यवस्था से छुटकारा मिल सकेगा। यह आपको नियमित मिलती रहेगी। इससे रासायनिक रंगों व कागज का उपयोग भी कम होगा, खर्च भी घटेगा। अतः पाठकों से अनुरोध है कि **कृपया अपना ई-मेल पता सभा को ई-मेल से भिजवा देवें।** आप जिन इष्ट-मित्रों, परिजनों व संस्थाओं को परोपकारी भिजवाना चाहते हैं, उनके ई-मेल पते भी भिजवा देवें, उन्हें भी यह निःशुल्क भेज दी जायेगी। ई-मेल-psabhaa@gmail.com

-व्यवस्थापक

वैचारिक क्रान्ति हेतु सत्यार्थप्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र प्रचार-प्रसार की भव्य योजना

विचार किसी भी देश, समाज व जाति की अमूल्य निधि (सम्पत्ति) है। जिसके पास में ठोस श्रेष्ठ विचार नहीं या फिर विचार को फैलाने के साधन नहीं हैं या फिर जो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र अपने विचारों की अवहेलना करते रहते हैं, उनका अस्तित्त्व भी एक दिन समाप्त प्राय: हो जाता है। आज हर सम्प्रदाय, समाज, समूह व देश अपने विचारों का प्रचार-प्रसार बड़ी प्रबलता से हर क्षेत्र में व हर साधन से कर रहे हैं, लेकिन काफी समय से आर्यसमाज में वैचारिक शिथिलता देखी जा रही है। इस शिथिलता को दूर करने का मात्र एक ही उपाय है कि हम सभी आर्य जन ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत **अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का प्रचार नये शिक्षित लोगों में करें।** इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर सभा के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला २०१४ दिल्ली में प्रचार-प्रसार की योजना तैयार की गयी है।

सत्यार्थप्रकाश ही क्यों?-१. यदि कोई व्यक्ति, समाज, समूह, संस्था या राष्ट्र एक ग्रन्थ (पुस्तक) पढ़कर विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो यह सत्यार्थप्रकाश से ही सम्भव है। **२.** आज के दूषित वातावरण में वैदिक वाङ्मय को ठीक-ठीक जानने हेतु, पढ़ने-पढ़ाने हेतु प्रथम सत्यार्थप्रकाश और महर्षि के अन्य ग्रन्थों का पढ़ना-जानना अत्यन्त आवश्यक है। **३.** दर्शनशास्त्र, इतिहास, भारतीय परम्परा, कर्त्तव्य, धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य तथा मानवता आदि क्या हैं? यह सारी जानकारी सत्यार्थप्रकाश से प्राप्त होती है व होगी। **४.** पाखण्ड, मक्कारी, कुरीतियों व बुराइयों का नाश भी सत्यार्थप्रकाश से सम्भव है। **५.** सत्यार्थप्रकाश व ऋषि के अन्य ग्रन्थों की उपस्थिति में कोई विधर्मी अपनी शेखी नहीं मार सकता तथा किसी भी हिन्दू को बहकाकर विधर्मी नहीं बना सकता। **६.** सत्यार्थप्रकाश के प्रभाव ने न जाने कितनों का जीवन ही बदल डाला। सत्यार्थप्रकाश के जोड़ की दूसरी पुस्तक दुर्लभ है, जिसमें ज्ञान का अमूल्य खजाना भरा पड़ा है। इसलिए इसका प्रचार-प्रसार अनिवार्य है, जरूरी है। **योजना का विवरण निम्न प्रकार का होगा-१.** सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में आकार लगभग ६०० पृष्ठ व साईज डमई आकार में होगी। लागत मूल्य ५०/- रुपये प्रति पुस्तक। **२.** ऋषि जीवन चरित्र हिन्दी में लगभग २०० पृष्ठ व साईज डमई आकार में। लागत मूल्य ३०/- रुपये प्रति पुस्तक। **३.** सत्यार्थप्रकाश हिन्दी से इतर (अन्य) भाषियों के लिए सी.डी.या डी.वी.डी. के माध्यम से उपलब्ध करवाया जायेगा। इस डी.वी.डी. में लगभग १८ भाषाओं में सत्यार्थप्रकाश होगा। लागत मूल्य लगभग २५/- होगा। **४.** संक्षिप्त ऋषि जीवन चरित्र अंग्रेजी में। लागत मूल्य १०/- रुपये।

नोट-यह साहित्य वैचारिक क्रान्ति के लिए व वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार के लिए गैर आर्यसमाजी सज्जनों व संस्थानों आदि को नि:शुल्क या अल्प मूल्य में वितरित किया जायेगा। साहित्य का ठीक-ठीक उपयोग हो व योग्य शिक्षित विचारवान् व्यक्तियों तथा संस्थानों तक पहुँचे इसके लिए अच्छी वितरण व्यवस्था की जाएगी। योग्य प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का चयन कर कार्य में नियुक्त किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति, संस्था आदि से एक फार्म भरवाया जायेगा, जिसमें उनका पूर्ण पता सम्पर्क आदि हो। जिससे भविष्य में परिणाम का मूल्यांकन किया जा सके। ग्रन्थों की प्रामाणिकता, शुद्धता व साज-सज्जा सुन्दरता का विशेष ध्यान रखा जायेगा। इस प्रचार-प्रसार योजना का उद्देश्य सत्यार्थप्रकाश व महर्षि के जीवन-चरित्र के प्रचार-प्रसार के माध्यम से मानव मात्र का कल्याण करना है। यह प्रचार-प्रसार मुख्य रूप से शिक्षित गैर आर्यसमाजी लोगों के लिए होगा। यह कार्य पूर्णरूप से महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप हो इसका विशेष ध्यान रखा जायेगा। इस कार्य की सफलता के लिए सभी आर्यजनों से, समाजों से व संस्थानों से निवेदन है कि इस महान् कार्य में तन-मन-धन से अपना सहयोग करने व अपने इष्ट मित्रों को भी सहयोग करने की प्रेरणा करें।

नोट-अपना आर्थिक सहयोग आप परोपकारिणी सभा अजमेर के नाम प्रेषित करते समय **सत्यार्थप्रकाश प्रचार-प्रसार शीर्षक** अवश्य लिखें। धन प्रेषित करने हेतु आप चैक, ड्राफ्ट व सीधे राशि सभा के बैंक खाते में जमा करवाकर जमा पर्ची की प्रतिलिपि प्रेषित कर देवें या फिर ईमेल, दूरभाष द्वारा सूचित कर सकते हैं। धन्यवाद।

खाता धारक का नाम-**परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**
बैंक खाता संख्या-**10158172715**
IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाऊस के सामने, जयपुर रोड़, अजमेर।
बैंक खाता संख्या-**091104000057530**
IFSC-IBKL0000091
email : psabhaa@gmail.com

नोट : इस योजना हेतु दिया गया दान आयकर की धारा ८० जी के अन्तर्गत कर मुक्त होगा।

सम्पर्क : मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

विधर्मियों के प्रश्न व स्वामी दर्शनानन्द जी के उत्तर

प्रस्तुत २० प्रश्न कुँवर दिग्विजय सिंह, वीधूपुरा, इटावा ने जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा, इटावा के माध्यम से भूमण्डल के समस्त आर्यसमाजी विद्वानों से ११ जुलाई १९१२ में किए थे। अतः श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने इन प्रश्नों का युक्ति-युक्त उत्तर देकर पुनः सरावगियों से २० प्रश्न किए। 'वैदिक यन्त्रालय' से जुलाई १९१२ में ही एक ट्रेक्ट के रूप में प्रकाशित ये प्रश्न व उत्तर, परोपकारी के सुधी पाठकों के समक्ष उपस्थित हैं। - सम्पादक

पिछले अंक का शेष......

९. प्रश्न- ईश्वर गतिरहित है या गतिसहित? यदि गति रहित है तो सृष्टि के अन्य पदार्थों में गत्युत्पादकत्व धर्म उसका स्वाभाविक है या नैमित्तिक? यदि स्वाभाविक है तो किसी एक दिशा प्रति गत्युत्पादकत्व है तो सृष्टि के समग्र पदार्थ एक ही दिशा को दौड़ने चाहियें। यदि अनेक दिशा प्रति गत्युत्पादकत्व है तो एक अखण्ड शुद्ध पदार्थ का स्वाभाविक धर्म विरुद्ध अनेक दिशाओं में गत्युत्पादकत्व नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें विरोध दोष आता है। यदि गति सहित है तो सर्वव्यापी में गति नहीं हो सकती।

उत्तर- ईश्वर सर्वव्यापी होने से स्वयं गतिशून्य है, किन्तु दूसरे पदार्थों को गति देने की शक्ति रखता है। उसकी शक्ति सर्वव्यापक होने से सर्वव्यापिनी है, इस वास्ते क्रिया एक दिशा की तरफ नहीं हो सकती। इसी से सब पदार्थ एक तरफ नहीं दौड़ते। सब कार्य उसके अन्दर होता है इसलिये विरुद्ध दिशाओं में गति उत्पादन करना किसी परिच्छिन्न के लिये तो दोष हो सकता है, विभु के लिये नहीं।

१०. प्रश्न- ईश्वर यदि जीवों को उनके कर्मों का फल देता है अर्थात् जीव कर्म के फल भोगने में परतन्त्र और कर्म करने में स्वतन्त्र हैं तो किसी सेठ के धनापहरण रूप कर्मफल में (जो कि इस न्याय के अनुसार ईश्वर ने किसी चोर के द्वारा उसको दिलाया है) चोर ने चोरी यदि ईश्वर की प्रेरणा से की है तो चोर निर्दोष ठहरा और ऐसी दशा में उसको मजिस्ट्रेट के द्वारा सजा न प्राप्त होनी चाहिये, यदि यह कहो कि चोर ने ईश्वर की प्रेरणा से ही चोरी की है तो जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है इस सिद्धान्त का विघात हुआ और समस्त अनर्थों का प्रेरक ईश्वर ही ठहरा और यदि यह कहो कि चोर ने ईश्वर की प्रेरणा के बिना ही चोरी की है तो ईश्वर में उस सेठ के प्रति कर्मफलदातृत्व क्या हुआ?

उत्तर- चोर चोरी स्वतन्त्रता से करता है इसलिये वह पापी है। सेठ का धन नाश करने के लिये ईश्वर को किसी स्वतन्त्र चोर की आवश्यकता नहीं। परतन्त्र बिजली आदि बहुत वस्तु हैं जो धन का नाश कर सकती हैं। जैसे किसी मनुष्य को गवर्नमेण्ट ने ४ बजे फांसी देने की आज्ञा दी है और घातक ने रस्सा गले में बांध कर चोर को फांसी पर लटका दिया, यदि उसी समय कोई अन्य पुरुष रस्सा खींचकर मार दे तो वह दोषी होगा। कोई कर्म पाप नहीं किन्तु नियम विरुद्ध पाप है। ईश्वर ने जो नियम स्थिर किये हैं उसे विरुद्ध चलने वाला पापी होगा। ईश्वर अपने कामों के लिये ज्ञानशून्य वस्तुओं से काम ले सकता है।

११. प्रश्न- यदि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी और दयालु है तो संसार में कोई भी पाप नहीं होना चाहिये, क्योंकि जिस समय कोई जीव पाप करने को उद्यमी होता है, उस समय ईश्वर उसकी पाप करने की इच्छा को जान लेता है, क्योंकि वह सर्वज्ञ है और वह उसे रोक भी सकता है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है और उसे रोक देना भी चाहिये क्योंकि पापों के निमित्त से आगे दुःख पाने वाले जीव को दुःख से बचाना दयालुता के धर्म के कारण उसको आवश्यक है।

उत्तर- ईश्वर का ज्ञान, बल, क्रिया, न्याय और दयालुता स्वाभाविक होने से नियमपूर्वक कार्य होता है। इच्छा पूर्वक काम जिसका होता है वह ऐसा कर सकता है, इच्छा अप्राप्त इष्ट की होती है, इष्ट वह होता है जो न्यूनता को पूर्ण करे और दोषों को दूर करे। ईश्वर में न न्यूनता है न दोष। अतः चाहिये का शब्द न्यूनता और दोषयुक्त के वास्ते होता है। उसको अपने स्वभाव से विरुद्ध चलने की आवश्यकता नहीं।

१२. प्रश्न- जीवों के पुण्य पापादि कर्म लगते हैं उन कर्मों का लक्षण क्या है? यदि कर्म का लक्षण शुभाशुभ क्रिया है तो शुभाशुभ क्रिया केवल एक समय रहती है, समयान्तर में उसका अभाव हो जाता है तो बतलाइये कर्मों का फल कालान्तर में किस प्रकार मिलता है।

उत्तर- जो ईश्वराज्ञा के विरुद्ध या ज्ञान के विरुद्ध कर्म है वह पाप है, जो ज्ञान के अनुकूल है वह पुण्य है। कर्म का फल इस तरह होता है कि कर्मरूप बीज से नाश होकर संस्कार और अदृष्ट दो अङ्कुर होते हैं और अदृष्ट के आगे फल होता है। इसकी विशेष व्याख्या न्यायदर्शनः-

सद्यः कालान्तरफलनिष्पत्तेः संशयः।

इससे आगे कर्मपरीक्षा प्रकरण में देखिये।

१३. प्रश्न– इच्छा, द्वेष, प्रयत्न यही जीव के कर्म हैं या अन्य? यदि यही हैं तो ये जीव के स्वभाव हैं या विभाव? यदि स्वभाव हैं तो वे नित्य ठहरे और वैसा होने से मुक्तावस्था में भी उनके सद्भाव का प्रसङ्ग आया और जब इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, दु:ख के कारण हैं तथा मुक्तावस्था में भी वे बने रहे तो मुक्ति में दु:ख निवृत्ति कैसे हुई? यदि विभाव है तो किस द्रव्य के निमित्त से हुए?

उत्तर– प्रयत्न जीव का स्वभाविक धर्म है इच्छा और द्वेष मन की उपाधि से मिथ्याभान की दशा में उत्पन्न होते हैं। यह स्वभाविक धर्म नहीं जो मुक्ति में भी रहे। जहाँ मुक्ति में मन नहीं रहता तो मन के औपाधिक धर्म किस प्रकार हो सकते हैं?

१४. प्रश्न– मुक्ति से जीव के पुनरागमन का कारण क्या है?

उत्तर– मुक्ति से जीव मुक्ति के साधनजन्य और विनाशी होने से पृथक् होता है। मुक्ति शब्द ही अनित्यता को दर्शाने वाला है, क्योंकि मुक्ति कहते हैं छूटने को, छूटता वह है जो बन्धा हो, बन्धा वह है जो छूटा हुआ है। जो स्वभाव से बन्धा हुआ है उसके बन्धने का प्रयोग ही नहीं हो सकता।

१५. प्रश्न– वेद को ईश्वर ने कैसे बनाया। लिखकर के किसी मनुष्य को दिया या किसी को सुनाया? यदि लिखा तो बिना हस्तपदादि के कैसे लिखा? यदि सुनाया तो बिना शब्द के कैसे सुनाया? यदि किसी अन्य उपाय से वैसा किया तो वह अन्य उपाय क्या है? और वैसा वह अब भी क्यों नहीं करता?

उत्तर– वेद को ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन ४ ऋषियों के हृदय में प्रकाश किया और उन ऋषियों ने अन्यों को पढ़ाया। हर एक ऋषि ने वेद को सुनने से श्रुति कहा, जैसे हर एक आदमी सूर्य के लिये यही कहता है कि देखते चले आये हैं किसी ने बनता हुआ नहीं देखा यही ईश्वर माननीय है कि वह आवश्यकता से पूर्व बनाता है, आँख से पहिले सूर्य बना, वेद ईश्वर ने लिखा नहीं, जैसे ईश्वर अब दूसरा सूर्य नहीं बनाता उसकी सर्वज्ञता से वही काम दे रहा है ऐसे ही वही वेद सृष्टि की आदि से अन्त तक काम देता है, अब संस्कार कर्म्मयोनि के रहित शुद्ध अन्त:करण वाले ऋषि नहीं जिनके हृदय में वेद का प्रकाश हो सके।

१६. प्रश्न– आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने ईश्वरकृत ग्रन्थ का लक्षण यह बतलाया है कि उसका प्रारम्भ 'आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के' इन शब्दों से हुआ करता है। परन्तु जब कि चारों वेदों में से किसी भी वेद का प्रारम्भ इन शब्दों से नहीं हुआ और न उन मन्त्रों के अर्थ से ऐसा भाव ही निकलता है तब क्यों कर वेद ईश्वरकृत हो सकते हैं?

उत्तर– ऋग्वेद के पहिले मन्त्र को जरा बुद्धि से विचार कर देखिये, उसका भाव यही निकलता है कि हे मनुष्यो! मैं तुम्हें अग्नि के लक्षण बतलाता हूँ। जो अग्नि सब का हित करने वाली, सम्मेलन करने का देवता, मौसमों के पैदा करने वाली, रत्नों के धारण करने वाली और होता अर्थात् हवन करने वाली है। यहाँ जीवों को अग्नि के लक्षण बतलाने वाला ईश्वर होने से साफ जीवों को उपदेश करना सिद्ध है और ऋग्वेद का पहिला मन्त्र है जहाँ से आरम्भ होता है।

१७. प्रश्न– स्वामी जी के भाष्यों में विशेषत: मेरे जौ, मेरे चना, मेरे महुआ, मेरे पटेरा, मेरे पसाई के चावल आदि अन्न तथा मेरे सिलबट्टा, मेरी उखली, मेरे मूसल आदि पदार्थ तथा मेरी एक मेरी दो मेरी दस मेरी पन्द्रह आदि शब्दों का प्रयोग आया है उनमें मेरा मेरी सम्बन्ध सूचक शब्द ईश्वर से सम्बन्ध रखते हैं या जीव से?

उत्तर– इस जगह पर जीव और ईश्वर दोनों के साथ मेरे शब्द का सम्बन्ध है। ईश्वर के साथ हर एक संयोग वाले पदार्थ का सम्बन्ध है उसकी सृष्टि होने से और मनुष्यों के साथ सम्बन्ध है उसके ज्ञान का विषय होने से और उसकी विद्या से लाभ उठाने के कारण।

१८. प्रश्न– यजुर्वेद भाष्य के २४ वें अध्याय में जो भिन्न-भिन्न देवताओं के लिये भिन्न-भिन्न पशु-पक्षी लिखे हैं उनका क्या अभिप्राय है?

उत्तर– यजुर्वेदभाष्य के मन्त्र ३ अध्याय २४ के भावार्थ में देखिये जो जिस मन्त्र का देवता है वह उसका गुण जानना चाहिये, इसी तरह हर एक मन्त्र के भावार्थ में दिखला दिया है वहाँ से हर एक को देख लीजिये।

१९. प्रश्न– यजुर्वेद के ३६वें अध्याय के नवमें मन्त्र में जो ''पृथ्वी के बीच विद्वानों के यज्ञस्थल में वेगवान् घोड़े की लेंडी लीद से तुझ को, पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये तुझ को तत्त्वबोध के उत्तम वैभव के लिये तुझको, यशसिद्धि के लिये तुझको, यश के उत्तम वैभव की सिद्धि के लिये तुझको सम्यक् तपाता हूँ'' आदि शब्द आये हैं उनमें कौन किसको तपाता है? और लेंडी के तापने से किस प्रकार पृथिव्यादि ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर– **शन्नो मित्रश्शं वरुण: शन्नो भवत्वर्य्यमा।**
शन्न इन्द्रो बृहस्पति: शन्नो विष्णुरुरुक्रम:।।९।।

पदार्थ:– हे मनुष्यो! जैसे (न:) हमारे लिये (मित्र:) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र (शम्) सुखकारी (भवतु) हो (वरुण:) जल के तुल्य शान्ति देने वाला जल (शम्) सुखकारी हो (अर्यमा) पदार्थों के स्वामी वा वैश्यों को

मानने वाला न्यायाधीश (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) महती वेदरूप वाणी का रक्षक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत शीघ्रता करने वाला (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होवे वैसे हम लोगों के लिये भी होवे।।९।।

इस मन्त्र में आपका मतलब दिखलाइये कहाँ है?

२०. प्रश्न- सरागी या विरागी मूर्ति के देखने से सराग या विराग परिणाम हो सकते हैं या नहीं? और किसी की मूर्ति के अपमान या सम्मान से उस असली पुरुष का अपमान या सम्मान समझा जा सकता है या नहीं?

उत्तर- राग और विराग यह दो मन की वृत्ति हैं जिस मूर्ति में मन नहीं उसको राग और विराग वाला मानना भूल है, मूर्ति राग और विराग दोनों से शून्य है इस वास्ते उसमें सिवाय जड़ता के और कोई परिणाम नहीं पैदा होता। हर एक मकान राग से शून्य है उसको देखने से राग की निवृत्ति नहीं होती, किसी भी मूर्ति का अपमान करने से उसका अपमान नहीं होता, किन्तु मूर्ख लोग चिड़ जाते हैं।

जनतन्त्र व्यापार हो गया

- राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

शिक्षा इक व्यापार हो गया।
दूषित सब संसार हो गया।।
धन सम्पदा और सत्ता भक्ति,
युग का शिष्टाचार हो गया।।
जहाँ स्वदेशी के नारे थे,
मालवर्ट बाज़ार हो गया।।
प्यारी भारत माँ पर प्यारो,
ओबामा का वार हो गया।।

बूचड़खाने यहाँ वहाँ पर,
गो बकरी संहार हो गया।।
बिन खादों के खेती बिगड़ी,
कैंसर का विस्तार हो गया।।
अन्नजल सभी विषैले दूषित,
खानपान बेकार हो गया।।
सत्य अहिंसा रटते रटते,
मीन मांस आहार हो गया।।
गांधीवादी मदिरा का अब,
ऊँचा ठेकेदार हो गया।।

धन लोलुपता घूस डकैती,
पैसा ही करतार हो गया।।
आरत भारत जननी रोती,
चहुँदिश भ्रष्टाचार हो गया।।
किसे सुनावें? कौन सुनेगा?
कदाचार व्यवहार हो गया।।
भू माफ़िया लम्पट हिंसक,
सबका बेड़ा पार हो गया।।

देश हित मरने वालों के सब,
सपनों का संहार हो गया।।
मल्टी कम्पनियों के कारण,
जीवन हम पर भार हो गया।।
छीना झपटी सत्ता का अब,
वोट बैंक आधार हो गया।।
भारत भू को छोड़ छोड़ कर,
यूरोप ही घर बार हो गया।।

वंशवाद की लहर चली तो,
जनतन्त्र व्यापार हो गया।।
अर्थव्यवस्था से मोहन की,
अपना बण्टाधार हो गया।।
बलात्कारियों का जगती में,
भारत अब सरदार हो गया।।
प्रजातन्त्र के आज गले का,
वंशवाद क्या हार हो गया।।
देखो! देखो!! राहुल गांधी,
निष्कलङ्क अवतार हो गया।।
धन, भुजबल से नेता जी तो,
जनता का भरतार हो गया।।

वेद सदन, अबोहर, पंजाब

भारत की उन्नति संस्कृत से ही सम्भव है

- डॉ. माधुरी एवं डॉ. निरंजन साहू

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। -अथर्ववेद १२.१.१२ के इस मन्त्रांश में ऋषि अथर्वा पृथिवी को माँ और स्वयं को उसका पुत्र कहते हैं। जिस प्रकार माँ के प्रति पुत्र के कर्त्तव्य होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण पृथिवी के प्रति भी, सभी मनुष्यों के कर्त्तव्य हैं। श्रीराम ने रामायण के युद्धकाण्ड में **''जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''** कहकर माँ और जन्मभूमि के प्रति अपने कर्त्तव्य को व्यक्त किया, जिसका तात्पर्य है कि अपनी माँ (जननी) और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक सम्मान दें।

प्राचीनता की दृष्टि से देखें तो मनुस्मृति में इस राष्ट्र को ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षिदेश, मध्यदेश, आर्यावर्त और म्लेच्छदेश के रूप में विभाजित किया है।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदनन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्ष्यते।।

-मनुस्मृति २/१७

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनिकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरम्।।

-मनु. २/१९

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।।

-मनु. २/२१

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।।

-मनु. २/२२

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः।।

-मनु. २/२३

मनु के अनुसार ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षिदेश में जन्म लेने वाले अग्रजन्मा (ब्राह्मण) से पृथिवी पर सारे मानव अपने-अपने चरित्र की शिक्षा (सीख) लें।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

-मनु. २/२०

पुराण में इस देश को भारत और यहाँ की प्रजा (सन्तान) को भारती कहा गया है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्च दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।

-वि.पु. २/३/१

भारत का अर्थ भा+रत भा अर्थात् ज्ञान में रत या लीन भारत

वेदों में सप्तसिन्धवः या सिन्धुः शब्द प्राप्त होते हैं।

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्तसिन्धवः।

-ऋ. ८/६९/१२

अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून्।

-ऋ. १/३२/१२

यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून्।

-अथर्व. २०/३४/३, २०/९१/१२ ऋ. ३/६१/७

वैदिक सम्पत्ति के लेखक पं. रघुनन्दन शर्मा के अनुसार सप्त और सिन्धु शब्द वेदों में हैं पर वे सर्वत्र सात इन्द्रियों, वाणी और सूर्य की किरणों के ही लिए आते हैं। पृथिवी या किन्हीं सात नदियों के लिए नहीं।....सिन्ध का सम्बन्ध बलूचिस्तान, ईरान और अरब से रहा है 'स' को 'ह' बोलते हैं, इसलिए उस प्रान्त का नाम सिन्धु, पुनः सिन्धु से सिन्ध और सिन्ध से हिन्द हो गया और उसी पर से सारे देश का नाम भी हिन्द कहलाने लगा, पर इसको कभी किसी ने सप्तसिन्धु नाम से नहीं पुकारा। पृ.सं. १०४

सिन्धु से ही हिन्दु शब्द बना है क्योंकि भाषा विज्ञान में 'स' को 'ह' परिवर्तन होता है जैसे सप्ताह बन गया हफ्ता। कहीं-कहीं हिन्दू की ये परिभाषाएँ मिलती हैं- संस्कृतशब्दकोष शब्दकल्पद्रुम में 'हीनं दूषयति इति हिन्दुः।' हिमं धुनोति इति हिन्दु। हिन्दुओं के रहने का स्थान हिन्दुस्थान हो गया है।

यह तो हुई इस देश के नामों की चर्चा। **''भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा''** कहते हुए संस्कृति के साथ-साथ संस्कृत को भी इस देश की प्रतिष्ठा बताया गया है। संस्कृत आरम्भ से ही इस देश की भाषा रही है पर इसका नाम ''संस्कृत'' सर्वप्रथम रामायण में मिलता है।

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
यदि वाचं वदिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।

-सुन्दर. ३०/१७/१८

प्रसंग है कि हनुमान् सीता के दर्शन अशोक वाटिका में करते हैं और विचार करते हैं कि इनके साथ बोलते समय मुझे किस भाषा का प्रयोग करना चाहिए। तब वे सोचते हैं कि यदि मैं संस्कृत का प्रयोग करता हूँ तो मुझ को रावण समझ कर सीता जी डर जायेगी।

महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में संस्कृत को दैवीवाक् कहा है। **संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभीः।।** इसी आधार पर इस भाषा को देवभाषा, गीर्वाणी आदि भी कहते हैं। पाणिनि द्वारा संस्कार की गई, परिशुद्धा, व्याकरणादि

दोषों से रहित भाषा संस्कृत कहलाई। वस्तुतः संस्कृति, संस्कार और संस्कृत ये तीनों शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से ही बने हैं, केवल इनके प्रत्यय ही अलग-अलग हैं।

सम्+कृ+क्तिन्=संस्कृतिः (स्त्री.), सम्+कृ+घञ्= संस्कारः (पुं.), सम्+कृ+क्त=संस्कृतम् (नपुं.)। अतः इनके अर्थ भी लगभग समान हैं।

भर्तृहरि ने नीतिशतक में संस्कृत वाणी को ही मनुष्य का स्थायी आभूषण कहा है-

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः,
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृताः मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

यहाँ संस्कृत वाणी का अर्थ संस्कार की गई वाणी है। जो उपर्युक्त तथ्य को स्पष्ट करती है।

वस्तुतः इस देश की हितसाधिका भाषा संस्कृत ही है। विश्वसाहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद की भाषा यही है। भारतीय संस्कृति में षोडश संस्कारों को करना मनुष्यों के लिए आवश्यक बताया गया है, उनकी भाषा भी संस्कृत है। पराशरस्मृति के अनुसार जन्म से प्रत्येक मनुष्य शूद्रवत् उत्पन्न होता है। संस्कार से ही द्विज बनता है।

जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विज उच्यते।

-पराशरस्मृति, (सुभाषित तरंगिणी)

संस्कृत को देवभाषा कहना उचित ही है क्योंकि इसमें दिव्यगुण समाहित हैं। इसकी शिक्षाएँ अमूल्य हैं। कुछ अनमोल सूक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।

-यजुर्वेद ४०/१

त्यागपूर्वक भोग करें, लोभ न करें, धन किस का है।

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।

पराई स्त्रियों को माता के समान, परद्रव्य में मिट्टी के ढेले की तरह, सर्व प्राणिमात्र में आत्मवत् जो दर्शन करता है वह पण्डित है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

मेरा तेरा ऐसी गणना लघुचित्त वालों की होती है, उदार चरित्र वालों के लिए तो पृथिवी ही परिवार है।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।

-ऋग्वेद १०/१९१/२

तुम सब मिलकर चलो, तुम सब मिलकर बोलो, तुम लोगों के मन एक सा जानें, जिस प्रकार पूर्व देव एकता को जानते हुए भाग को प्राप्त करते हैं। इस सूक्त के चारों ही मन्त्र मनुष्यों को साथ चलने का आदेश देते हैं इसलिए यह सूक्त संगठन सूक्त कहलाता है।

संस्कृत के विषय में महापुरुषों के विचार निम्न प्रकार है-

१. स्वतन्त्रता के सूत्रधार वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती का विचार है कि- आर्यावर्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है.... उसी से देश का कल्याण होगा। अन्य भाषा से नहीं। हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत है।

वेद का ज्ञान संस्कृतभाषा में दिया, जो कि व्यक्तवाक् है।..... संस्कृत में ही प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया।

-सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास, ०७

२. राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी- संस्कृत से ही प्रायः सभी भारतीय भाषाएँ उत्पन्न हुई हैं, संस्कृत से वे प्रभावित पुष्ट एवं समृद्ध हैं, हमारी भाषाओं के विषय में वह गंगा नदी की तरह है। यदि वह सूख जाए तो समस्त भाषाएँ भी निष्प्राण हो जायेंगी।

यदि बालक-बालिकाओं को संस्कृत विद्या न आवे तो मैं उनकी विद्या अपूर्ण (अधूरी) मानता हूँ।

३. संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति का किसी प्रकार का अस्तित्व नहीं रहेगा। संस्कृत के बिना भारत का अपना (आत्म) स्वरूप टिक नहीं सकता। इसलिए मैं संस्कृत के प्रचार को हृदय से चाहता हूँ। भारत को एकसूत्र में बान्धने की निगूढ़ शक्ति संस्कृत भाषा में ही है।

- भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू।

४. हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का स्रोत संस्कृत से निकल कर प्रवाहित होता है।

- भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद।

५. हमारी पैतृक सम्पत्तियों में से सर्वाधिक मूल्यवान् रत्न संस्कृत भाषा ही है।

-काशी विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मदनमोहन मालवीय

६. हमारे देश का आत्मा इस संस्कृत भाषा में ही है।

- प्रथम केन्द्रीय शिक्षामन्त्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद

७. भारत की श्रेष्ठता तथा महत्ता संस्कृत में ही समाविष्ट है। **पृ.सं. ७०**

यह संस्कृत भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का दर्पण है। **पृ.सं. ७४**

आधुनिक कम्प्यूटर (संगणक) युग में वैज्ञानिकों ने

प्रोग्रामिंग के लिए संस्कृत को सर्वश्रेष्ठ भाषा के रूप में चुना है, अत: देश को इक्कीसवीं सदी के संगणक जगत् में जाने के लिए संस्कृत शिक्षा की अनिवार्यता और अधिक हो गई है। **पृ.सं. ५**

यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अंग्रेजी से भी अधिक उपयोगी और प्रभावशाली हो सकती है तो वह है संस्कृत। हमें अपने देश में एकता और विश्व में भारत के उदार चरित्र की स्थापना के क्रम में यह प्रयास करना चाहिए कि संस्कृत विश्व की संपर्क भाषा बने। **-पृ.सं. ९**

भारत की भाषात्मक एकता के लिए संस्कृत से बढ़कर दूसरी कोई भाषा नहीं है। संस्कृत ही कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा द्वारिका से कामरूप कामाक्षी तक सम्पूर्ण देश को एकसूत्र में बान्धने की शक्ति रखती है। **पृ. सं. १९८**

आयुर्विज्ञान का अध्ययन संस्कृत के बिना हो ही नहीं सकता। हम भली-भान्ति जानते हैं कि नवीन ज्ञान-विज्ञान के लिए पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करने में संस्कृतभाषा अपनी निर्माण शक्ति के कारण कितनी उपयोगी है। **पृ.सं. १९८**

- दुर्गावती उपाध्याय, विगत उन्नीसवीं शताब्दी में संस्कृत शिक्षा की स्थिति

८. संस्कृत भाषा समस्त सभ्यताओं का मूल है।

-प्रो. मैकडॉनल, इंग्लैण्ड।

९. संस्कृतभाषा ही लैटिन, ग्रीक, इंग्लीश, फ्रेंच आदि सब भाषाओं का मूल है। संस्कृतभाषा विज्ञान की एक खान है। संस्कृत के विज्ञान को आंग्लानुवादों के द्वारा पढ़कर बहुत विज्ञान को प्राप्त किया। यदि हमनें संस्कृत ही पढ़ा होता तो अपरिमित विज्ञानरत्नों को प्राप्त किया होता।

-प्रो. जेम्स, इंग्लैण्ड।

१०. भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत है।

-ए.फ्रेजर, इंग्लैण्ड।

११. अमृत मधुर होता है। संस्कृत उससे भी मधुर होता है। यह देवताओं के लिए अनुभव करने योग्य है। इसलिए देवभाषा कही जाती है। संस्कृत में माधुर्य है, हम विदेशीय सदा माधुर्य में डूबे हुए हैं। जब तक भारत रहेगा, जब तक हिमालय, विन्ध्यापर्वत रहेंगे, जब तक गंगा, गोदावरी नदियाँ रहेंगी तब तक संस्कृत विराजित रहेगा।

भाषासु मुख्या मधुरा, दिव्या गीर्वाणभारती।
तस्माद् हि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्।।
यावद् गंगा च गोदा च, यावद् विन्ध्यहिमाचलौ।
यावद् भारतवर्षं स्याद्, तावदेवहि संस्कृतम्।।

- प्रो. विल्सन, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय व संस्थापक शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, कोलकाता।

१२. संस्कृत भाषा की संरचना अद्भूत है, वह ग्रीक से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध और दोनों से भी परिष्कृत है।

- २ फरवरी १७८६ को सर विलियम जोन्स का उद्घोष।

१३. भारत की परम्पराओं को भारत के वाङ्मय को न जानने वालों को मैं भारतीय नहीं मानता। प्रत्येक भारतवासी को वह चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान संस्कृत ज्ञान का होना अनिवार्य है। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति को न जानने वाला भारतीय कैसे हो सकता है? इसलिए भारत की प्राचीन भाषा का ज्ञान सभी को अनिवार्य रूप से होना ही चाहिए।

- बद्रोद्दीन तैयब, उपकुलपति, अलीगढ़ विश्वविद्यालय।

स्वामी विवेकानन्द- The very sound of sanskrit words gives a prestige and a power and strength to the race.

Sanskrit and prestige go together in India. As soon as you have that, none dares say anything against you. That is the one secret; take that up.

श्रीमाता का कथन है कि- Sanskrit is better. Sanskrit is a much fuller and subtler language, so it's probably much better. But these mordern languages are so artificial (by this, I mean superficial, intellectual); They things up into little pieces and remove the light behind.

यदि वयं भारतीयभाषाणां शब्दकोशेषु दृक्पातं कुर्मः तर्हि मलयालं, बंगला, असमिया, ओडिया, इति आसु भाषासु ८० प्रतिशतं, कन्नड़, तेलगु, हिन्दी आसु ७० प्रतिशतसंस्कृतशब्दान् प्राप्नुमः। मद्रासविश्वविद्यालयेन प्रकाशितेषु बृहत्-तमिल-कोशस्य सप्तसु भागेषु संस्कृतस्य ४०,००० शब्दाः सन्ति।

India's National Language, New delhi. 1955, pp. 200-201

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि संस्कृत भाषा के शिक्षण माध्यम से जातिगत भेदभाव दूर हो सकते हैं- The only safety, I tell you men who belong to the lower castes, the only way to raise your condition is to study Sanskrit. Who do you not become Sanskrit scholars? Why do you not spend mil-

lions to bring Sanskrit education to all castes of India? That is the questions. The moment you do these things, you are equal to the brahmin. The Vedanta Keshari, Sri Ramakrishna math, Mylapore, Madras, May 1962, p. 16. Complete works, vol. iii. pp. 298-99

भारत की असमर्थ सम्पर्क भाषा-जनशिक्षा और संस्कृत, १९६७, पृ. ६३ में चक्रवर्ती ध्यानेश नारायन ने लिखा है कि एक अधिक मत से हिन्दी भाषा भारत की सम्पर्क भाषा रूप से स्वीकृत हो गई है।

किन्तु यह भाषा दृष्टि से सर्वथा असमर्थ प्रतीत हो रही है। वस्तुत: यह भाषा हिन्दी भाषी जनपदों के लिये उपयोगी है न कि समग्र भारत वर्ष के लिए। इस विषय में श्रीमाता का वचन उद्धरण करने योग्य है-

Hind is good only for those who belong to a Hindi-speaking province. Sanskrit is good for all Indians.

The mother and sri Aurobindo on Sanskrit, 1994, p. 9.

श्रीमाता की भविष्यवाणी है कि संस्कृत भारत की राष्ट्रभाषा होगी-

संस्कृतं भारतस्य राष्ट्रभाषा भवेत्। मम आशीष:।

-श्रीमाता, १९/४/१९७१

Sanskrit ought to be the national language of India.

संस्कृत भाषा समग्र भारत को एकसूत्र में बाँधने के लिए सर्वथा समर्थ है- इस विषय में श्री अरविन्द कहते हैं कि कोई भी सच्चा भारतीय जिसने भारत माता के हृदयस्पन्दन को स्पर्श किया है वह कदापि अंग्रेजी भाषा को अपनी भाषा स्वीकार नहीं करेगा।

भाषा राष्ट्र की प्रगति में प्रधान साधन और दर्पण है अत: कोई भी राष्ट्र, कोई भी जाति वा कोई भी समुदाय अपनी भाषा को छोड़ कर वास्तविक जीवन बिताने में समर्थ नहीं हो सकता है।

इस पृथिवी पृष्ठ में अतिमानस शक्ति का अवतरण हो चुका है। इस शक्ति के द्वारा अतिमानव का जन्म होगा। अतिमानव की भाषा संस्कृत होगी क्योंकि यह भाषा अमरता की भाषा है। मृतसंजीवनी अमृत भाषा है। sri Aurobindo, sabcl vol. 15, social and political thought, 1971, pp. 494-95

वस्तुत: यह मानवमात्र की भाषा है। यदि कोई हमें पूछे केरल की भाषा मलयालम, तमिलनाडु की भाषा तमिल, ओडिशा की भाषा ओडिया, बंगाल की भाषा बंगला, गुजरात की भाषा गुजराती, महाराष्ट्र की मराठी, उत्तर भारत की हिन्दी और राजस्थान की राजस्थानी है। यदि हम राज्य की संकीर्णता से बाहर आकर अपने आपको भारत के रहने वाले भारतीय समझें तो हमारी मातृभाषा बस एक ही हो सकती है, वह है संस्कृत। क्योंकि यह किसी एक विशेष राज्य की भाषा नहीं है अपितु समग्र राष्ट्र की भाषा है।

सभी भाषाओं से संस्कृतभाषा को पृथक् करने पर भी सभी भाषा मृत हो जायेंगी। संस्कृत भाषा मृतभाषा नहीं है, अमृत भाषा है। संस्कृत भाषा शुद्ध भाषा है। अन्य सभी भाषाएँ विकृत भाषाएँ हैं। इसलिये संस्कृत भाषा दूसरी भाषाओं को जीवित रखती है अत: यह मृत संजीवनी भाषा है।

संस्कृत भाषा के शब्दों की संख्या अनन्त है। क्योंकि उसमें नये शब्दों के निर्माण का सामर्थ्य पर्याप्त मात्रा में है। यदि संस्कृत भाषा के शब्दों की संख्या को परार्द्ध १००,००,००,००,००,००,००,००० कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं है।

संस्कृत भाषा सभी आर्य भाषाओं की जननी है। भारतवर्ष की समस्त प्रान्तीय भाषाओं में ८० से ९० प्रतिशत शब्द इसी भाषा में हैं।

वर्तमान में राजनीतिक स्वार्थों के चलते हुए संस्कृत भाषा को जितना सम्मान मिलना चाहिए उतना नहीं मिल पा रहा है। यही कारण है कि देश में विभिन्न प्रकार के उपद्रव सर्वत्र दिखाई दे रहें हैं। कहा गया है कि-

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते, पूज्यानां तु विमानना:।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते, दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

-पंचतन्त्र/काको. १८३

पंचतन्त्र के लेखक विष्णु शर्मा कहते हैं कि- अपूजनीय लोगों की जहाँ पूजा होती है एवं पूजनीय लोगों का जहाँ अपमान होता है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण और भय ये तीन होते हैं।

The place where undesereving persons are respected and deserved persons are insulted, there these three things- Famine, Death and terror come into existence.

अन्त में आप सभी अमृत सन्तानों से यही प्रार्थना करना चाहते हैं कि लोक भाषा प्रचार समिति, भारत ने संस्कृत भाषा को लोकभाषा अर्थात् जन-जन की भाषा बनाने के लिए जो भागीरथ प्रयास किया है इस में आप सभी के तन, मन और धन से सहयोग एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

- ९, विद्या विहार, कायड मार्ग, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय के पास, अजमेर, राजस्थान-३०५००१

अपेक्षाएँ-किससे व कितनीं?

- सुकामा

यह जीवन जीते हुए हम विभिन्न प्रकार के लोगों से विभिन्न स्तरों पर व्यवहार करते हैं। -स्वयं से, परिवार वालों से, परिचितों से, अपरिचितों से। जाने-अनजाने इन सब से हमारी बहुत-सी अपेक्षाएँ बन जाती हैं। जब तक ये पूरी होती रहती हैं- तब तक तो ठीक चलता रहता है, पर जब पूरी नहीं होती हैं तो हमें दु:ख होता है, बाधा होती है, कष्ट होता है।

प्रश्न उठता है कि अपेक्षा किससे की जाए? सर्वप्रथम हम स्वयं को ही लें-सूक्ष्मता से देखें-क्या हम अपने स्वनिर्धारित मापदण्डों पर जी रहे हैं? हमारी अपनी स्वयं के प्रति धारणाएँ, अपेक्षाएँ, अभिलाषाएँ कितनी बार धराशायी होतीं हैं? विकट परिस्थितियों के आते ही हम अपना सारा संयम, शान्त प्रवृत्ति, अविचलन, सब भूल जाते हैं। कितनी बार प्रतिज्ञाएँ करते हैं और फिर स्वयं ही तोड़ डालते हैं। गम्भीरता से देखें तो हमारा अपने मन पर, अपने विचारों पर, अपनी अनुभूतियों पर कोई दृढ़ नियन्त्रण नहीं है। हम वेग के साथ बह जाते हैं। इसी कारण से हम स्वयं से जो अपेक्षाएँ रखते हैं- वो पूरी नहीं कर पाते हैं। हम अपने स्तर को स्वयं की निगाहों में बना कर नहीं रख पाते हैं। तब हमें ग्लानि होती है, क्षोभ होता है पर क्योंकि हम स्वयं से अथाह प्रेम करते हैं- हम अपने आप को क्षमा कर देते हैं और एक नया मौका देते हैं, फिर से नए व्यवहार के, दिनचर्या के, खान-पान के मापदण्ड निर्धारित करते हैं- फिर से पालन की प्रक्रिया शुरू करते हैं- कुछ अपेक्षाओं पर हम प्रयास से खरे भी उतरते हैं- पर कुछ फिर कहीं जीवन पथ पर पीछे छूट जाती है- हम आगे निकल जाते हैं- लगता है-

मेरी राह में रह गया बहुत पीछे,
शायद मुकाम था मेरे ठहरने का

पर जीवन धारा तो बहती रहती है। हम धीरे-धीरे स्वयं में सुधार भी लाते हैं जिनसे आशा बंधती है। after all-Hope sustains life!

अब अपने आसपास के लोगों पर दृष्टि डालें- चाहे परिवार के हों, मित्र हों, कार्य क्षेत्र के हों, अध्यात्म मार्ग के हों- सभी से हम कई अपेक्षाएँ रखने लगते हैं। ये स्वत: ही बन जाती हैं- सम्बन्धों की वजह से, पद-प्रतिष्ठा की वजह से, विद्या की वजह से और धन-सम्पत्ति की वजह से। यहाँ मुख्य मुद्दा ये सामने आता है कि दूसरों को ठीक से मालूम ही नहीं होता है कि हम मन ही मन उनसे क्या उम्मीद लगाए बैठे हैं? उन्हें इस बात का कतई आभास ही नहीं होता कि हमारे मन में क्या चल रहा है? हम उनसे क्या-क्या अपेक्षाएँ रखकर चल रहे हैं? अगर कुछ को वो जान जाते हैं और उन्हें पूरा करने में समर्थ होते हैं तो वो वैसा कर देते हैं। कई बार वो चाहते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से हमारी अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते हैं। यहाँ पर दूसरों की मजबूरियाँ, परिस्थितियाँ व मानसिक स्थिति भी अहम रोल अदा करती है। अगर उनका सामर्थ्य नहीं हो या वो हमारी अपेक्षाएँ पूरी तरह जान नहीं पाएँ तो हम मन ही मन क्षुब्ध हो उठते हैं- मुझे तो कोई समझता ही नहीं है- मेरी तो कोई सुनता ही नहीं है आदि-आदि और ऐसे विचारों की शृंखला चल पड़ती है- हम अवसाद से घिर जाते हैं। बड़ी विचित्र स्थिति होती है। यहाँ सोचना ये होता है कि सामने वाला भले ही विद्वान् हो, योगी हो, पढ़ा लिखा हो पर है तो अल्पज्ञ ही। प्रत्येक मनुष्य के ज्ञान व साामर्थ्य की एक सीमा होती है। जब हम स्वयं अपने बारे में सब कुछ जानते हुए भी अपनी कसौटियों पर पूरा नहीं उतर पाते हैं तो दूसरों से जो कुछ भी नहीं जानते या थोड़ा जानते हैं तो उनसे अपनी बात की पूर्ति की अपेक्षा रख कर, तनाव में आना न्याय संगत नहीं है। यूँ भी जब हम स्वयं को दूसरों के स्थान पर खड़ा करके देखेंगे तो उनके व्यवहार के कारण उनसे होने वाला द्वेष स्वत: ही समाप्त हो जाएगा। हमारा मानसिक सन्तुलन बना रहेगा।

अब तीसरा पक्ष- मुख्यत: जिससे हमारी आत्मीयता रहती है- वो है ईश्वर। हमारी ईश्वर से क्या अपेक्षाएँ हैं? हम ईश्वर से क्या चाहते हैं? हम सुख-शान्ति, धन-वैभव, मान-सम्मान, वैराग्य, योग में गति, सज्जनों का संग.... ये सूची अति दीर्घ है- विस्तृत है। व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करती है। पर मूलभूत ये अपेक्षाएँ तो हर किसी की रहती हैं- कुछ की कम या ज्यादा हो सकती है और हम चाहते हैं कि ईश्वर इन सब को यथाशीघ्र बिना किसी बाधा के पूरा भी कर दे। यहाँ कई बार हम ईश्वर की कृपा पर, उसके दिए आन्तरिक व बाहरी ऐश्वर्यों पर अंकुश लगाने लगते हैं- सन्देह करने लगते हैं- जो हमारी अज्ञानता का द्योतक है, हमारी अपनी काबलियत के मुताबिक ईश्वर हमें देता ही है- उसने पंच भूत, प्रकृति, परिवार, पैसा, सौन्दर्य, सुख-सुविधाएँ, साधन, सम्पत्ति सब दे रखें हैं।

विपरीत पक्ष में देखें कि क्या ईश्वर हमसे कुछ अपेक्षा रखता है? स्वतन्त्र प्रयोग के लिए अगर इस बात को लें

कि वह वेद की आज्ञाओं को पूरा करने में, निभाने में, धर्मपूर्वक परोपकार सहित जीवन यापन की अपेक्षा रखता है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अगर ईश्वर ये हमसे अपेक्षा रखता है- तो हम कहाँ तक उसमें अपने आप को खरा उतार पाते हैं? विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि छोटे से बड़े तक अनगिनत शुभ संकल्प हमारे दृढ़ विश्वास की कमी के कारण प्रति क्षण, प्रति दिन टूट जाते हैं। हम उन आज्ञाओं, आदेशों, अपेक्षाओं को पूर्णतया जीवन में नहीं उतार पाए हैं। मानवता से द्रोह की भावना हम छोड़ नहीं पाए हैं, राग-द्वेष छोड़ नहीं पाए हैं- यूँ कहें कि हम-

बिगड़-बिगड़ के संवर न पाए,
सत्य का दामन पकड़ न पाए।
भटकते रहे इन राहों पर बरसों से,
अभी तक मंजिल पर पहुँच न पाए।।

निष्कर्ष के रूप में देखें तो पाएँगे कि जब हम दूसरों से अपेक्षाएँ रख कर, उनको पूरा होने की उम्मीद रख कर हम अपने मन, संयम, धैर्य की परीक्षा करते हैं तो ज्यादातर अनुत्तीर्ण ही होते हैं, अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं, सो हमें दूसरों से कम से कम अपेक्षाएँ रखनी चाहिए। अगर हम किसी से शत् प्रतिशत् ईमानदारी से सहयोग अपेक्षित कर सकते हैं तो वह हम स्वयं ही है। दूसरा शख्स दूसरा ही होता है- कितनी ही आत्मीयता वाला क्यों न हो? कितना ही नज़दीकी क्यों न हो? माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, गुरु-आचार्य, कोई भी हो- ईश्वर के सिवा कोई भी जब हमें ज्यों का त्यों नहीं समझ सकता तो हम क्यों दूसरों से अपेक्षाएँ रख के अपने समय व श्रम को व्यर्थ करें?

प्रयास करें- धीरे-धीरे अपनी योग्यताओं को बढ़ाएँ- अपने शुभ कर्मों के, व्यवहार के, मापदण्डों को ऊँचा करते जाएँ- उन पर पूरा उतरने की कोशिश करें। बुराइयों को छोड़ने का अवधि भी स्वयं निर्धारित करें- इसके लिए किसी योग्य की सहायता ली जा सकती है। दूसरों को कम से कम बाधित करें- कम से कम परेशान करें- निहायत जरूरी हो तभी अपनी अपेक्षा दूसरे व्यक्ति को बताएँ। कम अपेक्षाएँ रखेंगे तो पूरी भी होंगी। Reduce your expectations from others. इससे आप महसूस करेंगे कि आप धीरे-धीरे नियमित, स्व सन्तुष्ट, शान्त जीवन यापन करने लगेंगे। मन के तालाब पर जब दूसरों से अपेक्षाओं के पत्थर नहीं फेकेंगे तो यह मन स्वतः शान्त होगा- स्थिर होगा- साधना में गति होगी।

जब हम और ईश्वर अत्यन्त निकट सहयोगी, मित्र, प्रेमी है तो बीच में तीसरे की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। जब हम ईश्वर की अपेक्षाओं पर पूरा उतरेंगे तो वह तो परम पिता है, परम माता है, सर्वत्र है, वह हमारी जरूरतों को ठीक-ठीक पूरा-पूरा जानता है- वह स्वयं इन्हें पूरी करेगा।

So have faith in GOD! submit your petition to omnipotent god directly and get it fulfilled. क्योंकि

कुछ देर है अंधेर नहीं, सौदा है अदल परस्ती है,
इस हाथ करो, उस हाथ मिले, यहाँ सौदा दस्त बदस्ती है।

- ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

धनराशि भेजने हेतु सूचना

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उस पर **'मन्त्री परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर

१. बैंक खाता संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या -10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

व्याकरण सूर्य गुरु विरजानन्द दण्डी

– **डॉ. रामप्रकाश**

विरजानन्द दण्डी ने अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया था। अष्टाध्यायी के सूत्रों के रहस्यों को जैसा उन्होंने (और बाद में दयानन्द सरस्वती ने) समझा था, वैसा विरले वैयाकरणों ने समझा होगा। उनका स्वरचित कोई व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, अत: उनके वैयाकरणत्व का साक्षात ज्ञान असम्भव है। उनके अपूर्व व्याकरण ज्ञान एवं प्रतिभा का दर्शन केवल दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में ही किया जा सकता है; यथा–

'कृञ् धातु का केवल भ्वादि पाठ पाणिनीय है, प्रचलित तनादि पाठ नहीं'[१]– लम्बे अन्तराल के पश्चात् ऐसा समझने वाले तथा अपने शिष्यों को समझाने वाले दण्डी जी पहले व्यक्ति थे। सायण से पूर्व पाणिनीय धातुपाठ में कृञ् धातु का पाठ भ्वादिगण में भी था और इसके **'करति, करतः, करन्ति'** प्रयोग लोक में प्रयुक्त होते थे जो अब प्रचलित नहीं परन्तु वेद और प्राकृत में ये रूप उपलब्ध हैं। क्षीर स्वामी, लीलाशुक मुनि, दशपादी उणादि वृत्तिकार और क्षेमचन्द्र जैसे अनेक वैयाकरण अपने ग्रन्थों में कृञ् धातु को भ्वादिगण में पढ़ते थे।[२] पाणिनीय धातुपाठ में समय-समय पर अनेक परिवर्तन हुए। बाद में सायणाचार्य ने कृञ् धातु को भ्वादिगण से बाहर निकाल दिया। वह स्वयं स्वीकार करते हैं कि प्राचीन परम्परानुसार पाणिनीय धातुपाठ में कृञ् धातु का पाठ भ्वादि में था जिसे उसने हटा दिया (माधवीया धातुवृत्ति, पृष्ठ २१)।

ननु कृञ् करणे भ्वादौ पठ्यते .... अनेन प्रकारेणास्माभिर्धातुवृत्तावयं धातुर्निराकृतः।

माधवीया धातुवृत्ति में अनेक स्थल इसकी पुष्टि करते हैं; जैसे –

यद्यपि मैत्रेयेणादितस्त्रय इदित उखिवखिमखयः मूर्द्धन्यादिर्णखिरनिदितः, इखिश्च न पठ्यन्ते, तथापि तदिरानेक व्याख्यातृणां प्रमाण्यादस्माभिः पठितः।

भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में सायण स्वीकृत धातुपाठ को अपनाया है। सभी नवीन और प्राचीन व्याख्याओं में भी कृञ् का तनादिगण में पाठ मिलता है। **तनादि कृञ्भ्य उ** (महाभाष्य,३.१.७९) सूत्र से पता चलता है कि महाभाष्यकार के समय मे भी कृञ् धातु का तनादिगण में पाठ विद्यमान था, इसी कारण उन्होंने उपर्युक्त सूत्र में कृञ् ग्रहण को अनावश्यक घोषित कर दिया। **'तनादि कृञ्भ्य उ'** सूत्र में कृञ् का पाठ करने से **'करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति'** रूप सिद्ध होते हैं। यह पाणिनीय पाठ नहीं है। अर्वाचीन वैयाकरणों ने उलटा कर दिया। जहाँ पाठ नहीं था वहाँ प्रक्षेप कर दिया; जहाँ था वहाँ से निकाल दिया। परिणाम– **'करति, करतः, करन्ति'** प्रयोग लोक व्यवहार में न रहा; और पाणिनि ऋषि पर व्यर्थ में पुनरुक्ति दोष भी लगा।

कृञ् धातु का भ्वादिगण पाठ पाणिनीय है -- यह पुनर्स्थापित किया दण्डी जी ने। इस प्रकार न तो उपर्युक्त सूत्र में कृञ् ग्रहण को अनावश्यक घोषित किया जा सकता है, न ही ऋषि पाणिनि पर पुनरुक्ति दोष लगता है। दण्डी जी ने यह ज्ञान अपने शिष्यों को दिया। उनके शिष्य हरिवंश ने स्वलिखित धातुपाठ[३] के अन्त में लिखा था–

वेदशैलवसुचन्दे तपस्ये बुधवासरे,
पञ्चम्यां कृष्णपक्षस्य धातुज्ञानस्य सिद्धये।
लिखितोऽयं धातुपाठो हरिवंशेन धीमता,
व्रजानन्दस्य शिष्येण परब्रह्मार्थदर्शिना।।

इस धातुपाठ में कृञ् धातु का भ्वादिगण में पाठ है। स्पष्ट है यह परिष्कार उनके गुरु विरजानन्द (व्रजानन्द) दण्डी का है।

ऐसा ही ऋषि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्यम् (३.५८) में लिखा है–

डुकृञ् करण इत्यस्य भ्वादिगणान्तर्गत-
पठितत्वाच्छब्विकरणोऽत्र गृह्यते।
तनादिभिः सह पाठादुविकरणोऽपि।

यहाँ दयानन्द सरस्वती ने कृञ् के भ्वादिपाठ के लिए **भ्वादिगणान्तर्गत** शब्द लिखे हैं**; तनाद्यन्तर्गत** नहीं लिखा। उ विकरण के लिए **'तनादिभिः सह पाठात्'** शब्द का व्यवहार किया है। हरिवंश और दयानन्द सरस्वती के लेखों में यह समानता स्पष्ट करती है कि दोनों शिष्यों ने यह ज्ञान निज गुरु विरजानन्द दण्डी से प्राप्त किया था।

लम्बे समय से कौमुदी का प्रचलन रहा है। अत: इस काल के वैयाकरण धातुपाठ की प्राचीन वृत्तियों से पूर्णतया अपरिचित हैं। दण्डी जी की यह सुविज्ञता उन्हें पुराने महावैयाकरणों के समकक्ष खड़ा कर देती है। उनका व्याकरण ज्ञान अद्‌भुत था। नि:सन्देह वे व्याकरण के सूर्य थे।

टिप्पणियाँ १. पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ५४।

२. हरिवंश लिखित धातुपाठ का हस्तलेख देश विभाजन से पूर्व डी.ए.वी. कालेज लाहौर की लालचन्द्र पुस्तकालय में नम्बर १७६९ पर था (दयानन्द सन्देश, मई १९४८,

पृष्ठ२१३-२१४)।

३. दण्डी जी से प्राप्त इस अपूर्व ज्ञान का दयानन्द सरस्वती ने अपने वेद और अष्टाध्यायी भाष्यों में उपयोग किया। इन भाष्यों में ऐसे अनेक स्थल हैं जो प्राचीन परम्परा से अपरिचित वैयाकरणों को प्रथम दृष्टया अशुद्ध प्रतीत होते हैं, जिन्हें समझने के लिए गहन व्याकरण ज्ञान और गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है।

सांसद (राज्य सभा), कुरुक्षेत्र

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति

- आचार्य विश्वामित्रार्य मुमुक्षु

ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए वेदान्त दर्शन कहता है **'जन्माद्यस्य यत:'** अर्थात् जिसके द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश होता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं। वृक्ष वनस्पति ये सारे ब्रह्म के ही द्वारा उत्पन्न होते हैं। संसार के अन्दर मनुष्यादि प्राणियों के शरीर की रचना भी ब्रह्म ही करता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, हाथी, घोड़े, मक्खी, मच्छर आदि असंख्य प्रजातियों में (प्रत्येक प्रजाति में पुन:) असंख्य प्राणी विद्यमान हैं। इस प्रकार से असंख्य शरीर हैं। वे सारे शरीर बड़े ही बुद्धिपूर्वक बनाये गये हैं, उन सभी प्राणियों में मनुष्य का शरीर सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य का शरीर रचनाकर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में सक्षम हैं। आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का ग्रहण होता है, उसी प्रकार से हाथ ,पैर, गुदा, उपस्थ आदि कर्मेद्रियाँ हैं, इनसे कर्मों का सम्पादन होता है।

वर्तमान समय में संसार में लगभग ७ अरब मनुष्य हैं। हर मनुष्य की आकृति एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं, हर मनुष्य की आवाज अलग-अलग है तथा हर मनुष्य के चलने-फिरने का ढंग भी अलग है। जितने मनुष्यादि प्राणी हैं, वे भविष्य में भी उत्पन्न होते जायेंगे। उन सबकी आकृति भी भिन्न-भिन्न होगी। संसार के अन्दर एक नाम के मनुष्य अनेकों मिलते हैं जिनके नाम बिल्कुल समान होते हैं, जैसे कि भारत के अन्दर राम, कृष्ण, मोहन, सोहन नाम के बहुत लोग मिल जायेंगे परन्तु उनकी आकृति भिन्न-भिन्न होती हैं। यदि एक ही आकृति के अनेक लोग गाँव अथवा नगर में हो तो उनकी अलग-अलग पहचान नहीं बन पायेगी। इसलिये ईश्वर ने मनुष्यों एवं प्राणियों की आकृति को भिन्न-भिन्न प्रकार का बनाया है। इससे रचनाकार की महानता का पता चलता है। इतनी सूक्ष्मता पूर्वक, विद्वत्तापूर्वक और विज्ञान पूर्वक रचना स्वयं सम्भव नहीं हो सकता। ये सब विचित्र रचनायें किसी विचित्र रचनाकार की ओर संकेत कर रहे हैं, जैसे कि किसी घड़ा को देखकर उसके रचयिता कुम्भकार की जानकारी होती है, वैसे ही ईश्वर प्रकृति को लेकर सृष्टि की रचना करता है। सृष्टि की विचित्र रचना को देखकर ईश्वर की सत्ता, अनुमान प्रमाण से सिद्ध होती है।

स्थिति (पालन)- ईश्वर केवल जगत् की उत्पत्ति ही नहीं करता बल्कि वह निरन्तर जगत् का पालन भी कर रहा है। ईश्वर ने ऐसी व्यवस्था बनायी है, जिस व्यवस्था के अनुसार यह जगत् निरन्तर कार्य कर रहा है। जैसे कि- पृथ्वी अपने अक्ष पर कुछ झुककर निरन्तर सूर्य के चारों ओर घूम रही है, जिससे ॠतुएँ परिवर्तित होती हैं इस ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार सूर्य पृथ्वी पर गर्मी दे रहा है। उस गर्मी और समुद्र के सम्पर्क से पानी वाष्प बनकर ऊपर उठता है, वही वाष्प ठण्डी हवा के सम्पर्क में आकार वर्षा के रूप में पृथ्वी पर बरस जाती है। पृथ्वी ठण्डी हो जाती है और पृथ्वी पर रहने वाले प्राणी गर्मी से राहत पाकर आनन्द की अनुभूति करते हैं। सभी नदी, तालाब और खेत भर जाते हैं और पृथ्वी में नाना विध अंकुरों का प्रादुर्भाव होने लगता है। वही अंकुर गेहूँ, धान, ज्वार-बाजरादि के रूपों में प्रकट होकर मनुष्यों व पशुओं को अन्न से भरपूर कर देते हैं। जिससे मनुष्यादि प्राणी आनन्द से परिपूर्ण होकर उस रचयिता व पालक, आनन्ददाता ईश्वर का गुणगान करने लगते हैं।

उपर्युक्त व्यवस्थायें अपने आप नहीं हो रही हैं। बल्कि इसके पीछे कोई महान् व्यवस्थापक है। इस बात का संकेत मिल रहा है, इससे पता लगता है कि उत्पादक के साथ-साथ ईश्वर व्यवस्थापक भी है।

नाश (प्रलय)- संसार के अन्दर उत्पन्न हुए सारे पदार्थ नष्ट भी हो जाते हैं। जैसे कि उत्पन्न हुआ वस्त्र, घड़ा आदि शनै-शनै क्षय को प्राप्त होने लगते हैं अर्थात् उत्पत्ति और विनाश शाश्वत नियम है, इस नियम के अनुसार बड़े से बड़े सूर्यादि पदार्थ भी नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् ये सारे पदार्थ अपने मूल प्रकृति कारण में विलीन हो जाते हैं। पुन: ईश्वर लम्बे अन्तराल के बाद सृष्टि की उत्पत्ति करता है। अत: यही प्रक्रिया अनादि काल से लेकर अनन्त काल तक चलती रहेगी। इसलिये ऐसे ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना हम सब मनुष्यों को करनी चाहिए जिससे हम ईश्वर के विषय में अधिक से अधिक जानकर उससे लाभ उठा सकेंगे।

महाविद्यालय गुरुकुल आश्रम आमसेना।

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर (द्वितीय स्तर)

दिनांक १५ से २२ जून २०१४

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों-बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे। साथ ही पढ़ाये गये विषयों की लिखित परीक्षा व आपके द्वारा पालन किये गये शिविर के अनुशासन का भी आंकलन किया जायेगा, इसी आधार पर प्रमाण–पत्र भी दिये जायेंगे। इस दिशा में अब तक दो शिविरों के माध्यम से प्राथमिक स्तर पर सफल प्रयास किया गया है। **इस द्वितीय स्तर के शिविर में वे ही भाग ले सकेंगे, जिन्होंने प्राथमिक स्तर वाले शिविर में भाग लिया है।** इस शिविर में प्राथमिक स्तर वाले शिविर की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मता से विषयों का अनुभव करवाया जाएगा और वैसा ही सूक्ष्मता से, कठोरता से नियम व अनुशासन होगा।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।
२. दिनचर्या के कुछ भाग में आकृति मौन भी अनिवार्य होगा।
३. प्रार्थी की न्यूनतम दसवीं के स्तर की योग्यता अनिवार्य है। इस हेतु प्रमाण–पत्र की प्रतिलिपि लाना आवश्यक है।
४. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।
५. शारीरिक व मानसिक सात्विकता के लिए यथासम्भव भोजन की मात्रा निश्चित होगी।
६. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।
७. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।
८. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।
९. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखना, पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।
१०. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा सर्दी, खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।
११. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।
१२. किसी भी मादक द्रव्य, चाय–कॉफी आदि का सेवन निषिद्ध होगा।
१३. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।
१४. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ–मंत्री परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) से संपर्क कर शिविर से पूर्व

शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता-बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्-पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ अन्यथा यहाँ भी क्रय किया जा सकता है। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। यदि अपने कार्य स्वयं न कर सकते हों तो सहायक साथ में लायें। अजमेर या निकटवर्ती स्थल (पुष्कर) देखना चाहें, तो शिविर से पूर्व या पश्चात् अतिरिक्त समय निकाल कर आयें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मंत्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४
email:psabhaa@gmail.com

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेल्वे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

-संयोजक

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. ११ से १५ मार्च, २०१४ **सन्ध्या गोष्ठी।**

२. १३ से २० अप्रैल, २०१४ **ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर,** सम्पर्क : ०९४१४००३७५६, समय : मध्याह्न १.३० से २.३० बजे।

३. १६ से २३ मई, २०१४ **आर्यवीर शिविर,** सम्पर्क- ०९४१४४३६०३१

४. २४ से ३१ मई, २०१४ **संस्कृत सम्भाषण शिविर,** सम्पर्क- ०९४१४७०९४९४

५. १ से ८ जून, २०१४ **आर्य वीराङ्गना शिविर,** सम्पर्क- ०९४१४४३६०३१

६. १५ से २२ जून, २०१४- **योग-साधना शिविर (द्वितीय स्तर),** सम्पर्क- ०१४५-२४६०१६४

विशेष- परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित पूर्व दो ध्यान-प्रशिक्षक-प्रशिक्षण शिविरों में प्रथम व उच्च प्रथम श्रेणी प्राप्त प्रशिक्षकों के लिए भी योग साधना शिविर (द्वितीय स्तर) में भाग लेने का अवसर रहेगा।

ध्यान प्रशिक्षण योजना

ध्यान का महत्त्व सदा से रहा है। आज के तनाव व प्रतिस्पर्धा के वातावरण में यह अधिक आवश्यक हो गया है। नई पीढ़ी यज्ञादि कर्मकाण्ड की अपेक्षा-ध्यान में अधिक रुचि व आकर्षण रखने लगी है। प्रौढ़ों व वृद्धों की आध्यात्मिक उन्नति की चाह ध्यान के माध्यम से पूरी हो सकती है। समाज सुधार व उन्नति के इच्छुक व इसमें प्रयत्नशील आर्यों को ध्यान प्रशिक्षण का उपाय सार्थक लगेगा। ऐसी इच्छा वाले सज्जन अपने यहाँ किसी भी आर्यसमाज, आर्य संस्था, विद्यालय, महाविद्यालय, गुरुकुल, सार्वजनिक स्थान आदि में 'ध्यान-प्रशिक्षण' करवाना चाहते हों, तो कृपया अपने व कार्यक्रम-स्थान, समय आदि की पूरी सूचना के साथ सम्पर्क करें।

परोपकारिणी सभा द्वारा प्रशिक्षित अनेक ध्यान-प्रशिक्षक इस कार्य में सेवा के लिए तैयार हैं। ये ध्यान-प्रशिक्षक आपके जनपद के निकट भी उपलब्ध हो सकते हैं। आयोजकों को कार्यक्रम हेतु स्थान, बैठक-व्यवस्था, आवश्यक हो तो माईक आदि की व्यवस्था, प्रशिक्षक के निवास, भोजन, आवागमन यात्रा आदि की व्यवस्था करनी होगी।

सम्पर्क-संयोजक, ध्यान प्रशिक्षण योजना, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर, ३०५००१, दूरभाष-०१४५-२४६०१६४, ईमेल-psabhaa@gmail.com

---

ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

१३ से २० अप्रैल, २०१४, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर। अधिकतम संख्या-५०। मात्र पूर्व पञ्जीकृत प्रतिभागियों के लिए। इसमें विद्वद् गोष्ठी द्वारा निर्धारित आर्यसमाज की ध्यान पद्धति का प्रशिक्षण दिया जायेगा व ध्यान करवाने का अभ्यास भी करवाया जायेगा। लिखित एवं प्रायोगिक परीक्षा के बाद योग्य व्यक्तियों को परोपकारिणी सभा द्वारा प्रशिक्षक-प्रमाण पत्र भी दिये जायेंगे। शिविर शुल्क १००० रु. है। १३ अप्रैल सायं ४ बजे तक पहुँचना अनिवार्य है। विलम्ब से आने वालों की शिविर में सहभागिता नहीं हो पायेगी। शिविर का समापन २० अप्रैल को सायं ५ बजे तक हो जायेगा। इच्छुक व्यक्ति, कृपया सम्पर्क करें-९४१४००३७५६, समय-मध्याह्न १.३० से २.३०।

विशेष- प्रतिभागी अपना आवेदन १५ मार्च २०१४ तक भेज देवें जिसमें कि नाम, पत्र व्यवहार का पूरा पता, अपना चित्र, दूरभाष संख्या स्पष्ट लिखा हो। स्वीकृति मिलने पर ३० मार्च तक अपना शुल्क अवश्य ही जमा करवाकर अपना पंजीयन करवा लेवें।

५० की सीमित संख्या में प्रथम पंजीयन करवाने वाले को ही शिविर में भाग लेने की अनुमति होगी।

पता-संयोजक, ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर, परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज. ३०५००१।ईमेल-psabhaa@gmail.com

---

अतिथि यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगांठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय जन्म तिथि/वैवाहिक वर्षगांठ आदि व दूरभाष संख्या सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नगद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

।।ओ३म्।।

अलग-अलग स्तरों में योग-साधना शिविर

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि-उद्यान, अजमेर में वर्षों से अब तक योग्य आचार्यों द्वारा योग-साधकों का निर्माण करने के लिए वर्ष में दो बार योग से सम्बन्धित व ध्यान से सम्बन्धित शिविरों का आयोजन किया जाता रहा है और साधकों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किया जाता रहा है। समाज में और अधिक योग्य व आदर्श साधकों की आवश्यकता अनुभव करते हुए इस वर्ष जून मास के शिविर में नवीन पाठ्यक्रम की विधि अपनाकर इस दिशा में एक नया मोड़ दिया गया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान में योग-साधना शिविर (प्राथमिक स्तर) के दो शिविर लगाये जा चुके हैं। यह शिविर ध्यान से सम्बन्धित, ईश्वर-जीव-प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को जानने से सम्बन्धित, योगदर्शन व सांख्यदर्शन के कुछ प्रमुख विषयों के सूत्रों के माध्यम से प्राथमिक स्तर पर योगदर्शन व सांख्यदर्शन को जानने-समझने से सम्बन्धित, आत्मनिरीक्षण में कुछ नये विषयों को सूक्ष्मता से समझने से सम्बन्धित, दिनचर्या को अनुशासित व सात्त्विक बनाने से सम्बन्धित तथा विभिन्न सैद्धान्तिक व व्यावहारिक विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित प्रारम्भिक स्तर के योग के इच्छुक साधकों के लिए लगाया गया। इस योग-साधना शिविर को आगामी वर्षों में चतुर्थ स्तर तक लगाने की योजना बनाई गई है। प्रारम्भिक स्तर से लेकर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्तर तक के शिविरों में पूर्व सूचित पाठ्यक्रमित विषयों में अधिक से अधिक सूक्ष्मता, दिनचर्या में और अधिक अनुशासन व सात्त्विकता, आहार-शुद्धि से लेकर मन, आत्मा की शुद्धि पर्यन्त अनुभवात्मक स्तर पर योग-साधकों को ज्ञान करवाया जाएगा। प्रत्येक स्तर के साधकों को उनके सैद्धान्तिक व व्यावहारिक ज्ञान से सम्बन्धित तथा उनके व्यक्तिगत आचरण व अनुशासन को दृष्टि में रखते हुए परीक्षा-पद्धति के माध्यम से प्रथम-श्रेणी व उच्च प्रथम-श्रेणी के प्रमाण-पत्र दिए जायेंगे। इस प्रकार की विधि से योग्य साधकों को समाज में सम्मान मिलेगा तथा वे और अधिक उत्साह से समाज व देश के कल्याण के लिए कार्यरत होंगे, उन्हें देखकर अन्य साधक भी प्रेरित होंगे।

परोपकारिणी सभा व गुरुकुल ऋषि उद्यान के योग्य आचार्यों व संयोजकों द्वारा नवनिर्मित इस योजना के प्राथमिक स्तर में पर्याप्त उपलब्धि हुई है। भविष्य में इस योजना में आप सब के सहयोग की आवश्यकता है।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हो। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

भौतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति से मानव जाति का कल्याण

- चतुर्भुज प्रसाद आर्य

परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि दो प्रकार की है। भौतिक और आध्यात्मिक।

भौतिक सृष्टि को परमात्मा प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों से बनाता है। प्रकृति का सबसे सूक्ष्म भाग तो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, इन तीन गुणों के मेल से बनता है। १२० परमाणु के योग से हवा, ३६० परमाणु के योग से अग्नि; ४८० परमाणु के योग से पानी और ६०० से ७२० परमाणु के योग से मिट्टी बनती है। प्रलयकाल में सभी चीजों के अणु-परमाणुओं का वियोग रहता है तथा सृष्टि काल में उन्हीं परमाणुओं के योग से जब हवा, अग्नि, पानी और मिट्टी बन जाता है, तब यह प्रकृति का विकार हो जाता है। जैसे चीनी एक वस्तु है इससे जब बतासा, पेड़ा, लड्डु, बर्फी बन जाता है तब इसे हम चीनी न कहकर अलग-अलग नामों से सम्बोधित करते हैं।

निरुक्त शास्त्र ने कहा है-

तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकाश्च।

पवित्र वेद में तीन प्रकार की ऋचाएँ हैं; परोक्ष, प्रत्यक्ष और आध्यात्मिक। आध्यात्म शब्द का अर्थ जीवात्मा और परमात्मा होता है।

जीवात्मा के लक्षणों का वर्णन न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन में हैं। न्याय दर्शन में जीवात्मा का प्रथम लक्षण 'इच्छा करना' बताया है। जिस शरीर के अन्दर जीव होता है, उसको ही इच्छा होती है। जीवात्मा का दूसरा लक्षण 'द्वेष करना' बताया गया है। व्यक्ति विद्या पूर्वक व अविद्या पूर्वक द्वेष करता ही रहता है। 'जीविकोपार्जन के लिए प्रयत्न करना' जीवात्मा का तीसरा लक्षण है। जीवात्मा का चौथा और पाँचवाँ लक्षण सुख और दुःख है। अच्छी बातों से सुखी और बुरी बातों से दुःखी होना जीवात्मा का लक्षण है। छठा लक्षण ज्ञान का घटना-बढ़ना है। जीवात्मा का ज्ञान हमेशा घटता-बढ़ता रहता है, एक जैसा नहीं रहता। वैशेषिक दर्शन में; उपर्युक्त कथित जीवात्मा के लक्षणों के अलावा भी कुछ लक्षणों का वर्णन है। जैसे- जीवात्मायुक्त शरीर वाले ही हम लोग श्वास लेते हैं और प्रश्वास को छोड़ते हैं। इसका प्रमाण पवित्र वेद और उपनिषदों में अनेकों जगह हैं। जीवात्मा के होने से ही मन संकल्प-विकल्प करता है। जीवात्मा के होने से ही हम चलते-फिरते हैं। जीवात्मा के होने से ही हम इन्द्रियों से कार्य करते हैं। जीवात्मा के होने से ही हमें अन्तर्विकार का होना यानि सर्दी-गर्मी, ज्वर-बुखार, भूख-प्यास लगता है। जीवात्मा के आकर-प्रकार यानि परिमाण का भी वर्णन श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय ५ के सूत्र संख्या ९ में है- बाल के अग्रभाग के सौ हिस्से किए जाए, उन हिस्सों में से एक के पुनः सौ हिस्से किए जाए, तो इनमें से एक हिस्से के परिमाण जितना ही जीवात्मा का परिमाण होता है। इसे दूसरे प्रकार से ऐसा भी समझें कि बाल के अग्रभाग के दस हजार वें हिस्से के बराबर जीवात्मा का आकार है। परन्तु यह स्थूल कथन है।

परमात्मा; प्रकृति और जीवात्मा से बिल्कुल भिन्न सत्ता है। परमात्मा निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त, एक रस और अखण्डित है। परमात्मा जन्म-मरण से रहित तीनों काल में हमेशा एक जैसा बना रहता है। पवित्र वेद और उपनिषदों में परमात्मा के इसी प्रकार का वर्णन है। परमात्मा को जीव जैसी इच्छा नहीं होती; क्योंकि जीव की इच्छा सर्वदा अप्राप्त के लिए होती है। परमात्मा को सब कुछ प्राप्त होने से उन्हें ऐसी इच्छा नहीं होती; परन्तु परमात्मा को ईक्षण शक्ति यानि दर्शन, विचार और कामना होती है; जिससे सृष्टि की रचना और सृष्टि का विनाश विहित समय के अनुसार करते हैं। जहाँ प्रकृति उपादान कारण है, परमात्मा निमित्त कारण है; वे ही इस सृष्टि को हम जीवों के लिए बनाए हैं। हम लोग अपने अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार परमात्मा की न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत फलों को परतन्त्र होकर भोगते हैं।

प्रकृति, जीव और ईश्वर; ये तीनों सत्ता अनादि और अनन्त हैं। इनका न कभी जन्म होता है और न कभी नाश होता है। प्रकृति जड़ है और जीव एवं ईश्वर ही चेतन है। जिस प्रकार आँख का विषय रूप है और कान का विषय शब्द है। मैं दुनिया के लोगों से पूछूँ कि आँख से आप सुनते क्यों नहीं हैं और कान से देखते क्यों नहीं हैं? तो इसका उत्तर दुनिया के लोग क्या देंगे? असलियत यह है कि परमात्मा जब-जब सृष्टि की रचना करते हैं; उसी समय हीं सभी वस्तुओं का गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र, धर्म आदि नियत कर देते हैं। जिस प्रकार आँख का विषय रूप है और कान का विषय शब्द है; उसी प्रकार जीवात्मा का ही विषय परमात्मा है। हम प्रत्यक्ष रूप से हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी वगैरह सबों को मरते देखते हैं। इन लोगों का शरीर जो प्रकृति से परमात्मा बनाए हैं; वह तो यहीं रह जाता है और जीवात्मा के निकल जाने से हम मर जाते हैं।

परमात्मा जीवात्मा के अन्दर और बाहर सराबोर हैं; जो जीवात्मा हमारे हृदय देश में है। पवित्र यजुर्वेद में भी इसका प्रमाण है कि

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासत्।

योगी उस ब्रह्म को अपने हृदयदेश में खोजते हैं। कैसे खोजते हैं इसका भी प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय ३२ के मन्त्र संख्या ११ में आया है कि

आत्मनाऽत्मानमभिसंविवेशः।

योगी अपने जीवात्मा के द्वारा उस ब्रह्म को प्राप्त करते हैं; ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। महर्षि पतञ्जलि जी के योगदर्शन के द्वितीय साधन पाद के सूत्र संख्या ५१ में चतुर्थ प्राणायाम का वर्णन है। इस चतुर्थ प्राणायाम की उत्पत्ति उपर्युक्त पवित्र वेद मन्त्र से हुई है। यज्ञ में जिस प्रकार हवन सामग्री को हवन कुण्ड में डालते हैं; उसी प्रकार जीवात्मा रूपी सामग्री का परमात्मा रूपी हवनकुण्ड में हवन करना ही चतुर्थ प्राणायाम की व्यावहारिक विधि है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द सरस्वती द्वारा लिखी हुई ध्यान-योग-प्रकाश में स्पष्ट है कि साधक या योगी को जैसे ही चतुर्थ प्राणायाम सिद्ध होता है; वैसे ही जीवात्मा का दर्शन होता है और जैसे ही जीवात्मा का दर्शन होता है; वैसे ही परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

आज दुनिया के अन्दर जो भी उथल-पुथल, शोषण-दोहन, भ्रष्टाचार, व्यभिचार और दुराचार और समस्याएँ हैं; उसका एकमात्र कारण हम अपने शरीर को ही सब कुछ समझते हैं। यह शरीर जिसे परमात्मा ने प्रकृति के पदार्थों से बनाया हैं; उसके भरण-पोषण के लिए हम झूठ, फरेब, ठगी आदि के द्वारा धन कमाते हैं और इसका पोषण ६० वर्ष से लेकर अधिक-से-अधिक १०० वर्षों तक करते हैं। परन्तु हम जो हैं यानि जीव हैं इसका ख्याल जीवन-पर्यन्त हम नहीं करते। इस अविनाशी जीवात्मा को जानने के लिए सत्याचरण, अहिंसा का पालन, शुभ कर्मों को हम नहीं करते। प्राचीन ऋषियों ने शास्त्रों के अन्दर स्पष्ट कहा हैं कि

अहमात्मा न शरीरमहमिन्द्रो न इन्द्रियम्।

यहाँ आत्मा शब्द का अर्थ जीव है। मैं जीव हूँ; यह प्रत्यक्ष दिखता शरीर नहीं हूँ। इन्द्र का अर्थ भी जीव है। मैं जीव हूँ; यह प्रत्यक्ष दिखता इन्द्रिय यानि हाथ, पैर, मुँह, कान और आँख नहीं हूँ। महर्षि मनु महाराज भी मानव जाति के लिए स्पष्ट व्यवस्था दिए हैं। जब इस शरीर से जीव निकलता है तो धन भूमि पर रह जाते हैं; पशु गौशाला में ही रह जाते हैं; पति के मृत्यु के बाद पत्नी घर के चौखट तक साथ देती है; सगे-सम्बन्धी और कुटुम्ब लोग श्मशान घाट तक साथ देते हैं; जिस शरीर का भरण-पोषण जीवन पर्यन्त हम करते हैं, वह चिता तक साथी रहता है और जो भी हम धर्म-कर्म करते हैं; वही जीवात्मा का एकमात्र साथी होता है।

भौतिक सृष्टि और आध्यात्मिक सृष्टि में समन्वय द्वारा ही योगेश्वर श्रीकृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम मानव समाज में सन्तुलन लाए हैं। इसलिए मानव जाति के कल्याण का एक मात्र निदान भौतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति (जीवात्मा और परमात्मा) से ही है।

आर्य सदन, मवेशी अस्पताल रोड, मोतिहारी,
जि. पूर्वी चम्पारण-८४५४०१ (बिहार)

वेद-गोष्ठी वर्ष २०१३ के पुरस्कार हेतु निबन्ध आमन्त्रित हैं

वानप्रस्थी श्री व्रतमुनि स्थिर निधि की ओर से वेद-गोष्ठी में पढ़े जाने वाले निबन्धों को पुरस्कृत करने की योजना है। पुरस्कार राशि निम्न प्रकार निर्धारित है-

प्रथम पुरस्कार - ६१००.०० रु.

द्वितीय पुरस्कार - ४१००.०० रु.

तृतीय पुरस्कार - ३१००.०० रु.

तृतीय पुरस्कार नव लेखकों ३० वर्ष की आयु तक के लिए निश्चित किया गया है।

जिन विद्वानों ने इस वर्ष ऋषि मेले के अवसर पर सम्पन्न वेद-गोष्ठी में निबन्ध वाचन किया है। यदि वे अपने निबन्ध में संशोधन करने के इच्छुक हैं तो वे ३१ जनवरी २०१४ तक अपने संशोधित निबन्ध संयोजक वेद-गोष्ठी, परोपकारिणी सभा, अजमेर के पते पर भेज सकते हैं।

यदि कोई विद्वान् अभी तक अपना निबन्ध नहीं भेज पाये हैं वे भी ३१ जनवरी २०१४ तक इसी विषय पर निबन्ध लिखकर भेज सकते हैं।

पश्चात् निबन्ध चयन समिति को भेजे जायेंगे। उनका निर्णय अन्तिम और मान्य होगा। पुरस्कार ऋषि मेला समारोह में प्रदान किये जायेंगे।

वेद-गोष्ठी का विषय ''**वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास**''

- संयोजक वेद-गोष्ठी

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एक मात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्ण रूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोध कर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों से भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युत पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्ष गांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाके फोड़कर जलाते हैं असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थिति होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ दिसम्बर २०१३ तक)

१. श्री राकेश कुमार, मुजफ्फरनगर, उ.प्र., २. श्रीमती सावित्री देवी, करनाल, हरियाणा ३. श्री अर्जुन मुनि, रोजड़, गुजरात, ४. श्री कृष्णचन्द शर्मा, जयपुर, राजस्थान ५. श्री योगेश कुमार इन्दोरा, अजमेर, ६. श्री गोपाल सैनी, अजमेर, ७. श्री निखिलेश सोमानी, अजमेर, ८. श्री सुनील बत्रा, दिल्ली, ९. श्री गजेन्द्र अरोड़ा, पाली, राजस्थान, १०. श्रीमती अलका, अहमदाबाद, गुजरात, ११. श्री नरेन्द्र कुमार, रोहतक, हरियाणा, १२. श्रीमती रामादेवी, गुड़गाँव, हरियाणा १३. श्री देवमुनि, अजमेर, १४. श्रीमती उमा मौंगा, नई दिल्ली, १५. श्री मुरलीधर, ब्यावर, राजस्थान, १६. श्री कौशल गुप्ता, गाजियाबाद, उ.प्र., १७. श्री एम.एल. गोयल, अजमेर, १८. श्री रजनीश कपूर, नई दिल्ली, १९. श्रीमती निर्मल, अजमेर, २०. श्री जगरामपुरी, बाड़मेर, राजस्थान।

–परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गौभक्तों से निवेदन

ऋषि उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला में उत्पादित गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगत अतिथियों को निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ–भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौओं को उत्तम चारा मिले इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें, उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चेक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१ से १५ दिसम्बर २०१३ तक)

१. श्री हेमसिंह आर्य, बाड़मेर, राजस्थान, २. श्री मोहित शर्मा, मेरठ, उ.प्र., ३. श्री गिरीश मेहरा, नई दिल्ली, ४. श्री योगेन्द्रसिंह, अजमेर ५. श्री आनन्द मुनि, जौनपुर, उ.प्र., ६. श्री शम्भू कुमार, पटना, बिहार, ७. श्री हरिसिंह वासनवाल, अजमेर ८. श्री रतनचन्द आर्य पब्लिक स्कूल सौसायटी, नई दिल्ली, ९. श्री श्यामसुन्दर बांगड़, अजमेर, १०. श्री रवि दातारता, गुड़गाँव, हरियाणा, ११. श्रीमती सुरुचि कमला हरचन्दानी, सरदार शहर, राजस्थान, १२. श्री राजकुमार आर्य, रोहतक, हरियाणा, १३. श्री मलिक राज, रोहतक, हरियाणा, १४. श्री श्यामसुन्दर, रोहतक, हरियाणा, १५. श्री ओंकारदत्त, अजमेर, १६. श्री मधुसूदन तोषनिवाल, अजमेर, १७. श्रीमती उर्मिला पारीक, अजमेर, १८. स्वामी चित्तेश्वरानन्द, देहरादून, १९. श्री निलेश मकवाना, अहमदाबाद, गुजरात, २०. श्री पंकज कुमार गर्ग, कोलकाता, २१. श्री चन्द्रप्रभु बड़गुजर, गुड़गाँव, हरियाणा, २२. श्री मुकेश, अलवर, राजस्थान, २३. श्रीमती उर्मिला उपाध्याय, अजमेर, २४. श्री वर्धिचन्द गुप्त, जयपुर, राजस्थान, २५. श्रीमती उमा मौंगा, नई दिल्ली, २६. श्री विनोद खन्ना, दिल्ली, २७. श्री राजेश त्यागी, अजमेर, २८. श्रीमती निर्मल, अजमेर, २९. श्रीमती प्रेमलता शर्मा, अजमेर, ३०. श्री मोहनलाल तँवर, अजमेर, ३१. श्रीमती गीता देवी, बिहार शरीफ।

–परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गुरुकुल दान

(१ अप्रैल से ३० नवम्बर २०१३ तक)

१. श्री अनूपसिंह, सोनीपत, हरियाणा, २. आर्यसमाज मन्दिर मॉडल टाउन, यमुनानगर, ३. श्रीमती कमला देवी

पन्चोली, अजमेर, ४. श्रीमती प्रेमवती, अजमेर, ५. श्रीमती रुक्मणी, सोनीपत, हरियाणा, ६. श्री सन्दीप मलिक, सोनीपत, हरियाणा, ७. स्वामी आशुतोष परिव्राजक, अजमेर ८. श्री सुभाष गुप्ता, जम्मू, ९. श्रीमती कमला आर्या, जोधपुर, राजस्थान, १०. श्री अनिल गुप्ता, अजमेर, ११. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचौली, अजमेर, १२. श्री कैलाश धाकड़, उज्जैन, म.प्र., १३. श्री लक्ष्मीनारायण आर्य, जोधपुर, राजस्थान, १४. श्रीमती मंजू कक्कड, पंजाब, १५. श्रीमती सुशीला शर्मा, अजमेर, १६. श्री दत्ताचार्य, आगरा, उ.प्र., १७. श्री राधेश्याम शर्मा, अजमेर, १८. डॉ. आर.के. माथुर, अजमेर, १९. श्री ब्रह्ममुनि वानप्रस्थी, अजमेर, २०. श्रीमती सूर्यकिरन आर्या, अजमेर, २१. श्रीमती सपना आर्या, सुजानगढ़, राजस्थान, २२. श्री यशवन्त राय गोयल, दिल्ली, २३. श्री देवमुनि, अजमेर, २४. श्री राधेश्याम, अजमेर, २५. श्री संजय शर्मा, अजमेर, २६. श्रीमती विद्यावती आर्या, नई दिल्ली, २७. श्रीमती कान्ता यादव, अलवर, हरियाणा, २८. डॉ. आर.सी. रॉय, लखनऊ, उ.प्र., २९. श्री कमल किशोर, बेतुल, म.प्र. ३०. श्री छज्जुराम कोकचा, कोटपुतली, राजस्थान, ३१. आर्यसमाज पार्कलेन, लुधियाना, पंजाब, ३२. श्री बालप्रकाश, लुधियाना, पंजाब, ३३. डॉ. वृद्धिशंकर उपाध्याय, छोटी सादड़ी, राजस्थान, ३४. श्री कमल नैन हांडा, दिल्ली, ३५. श्रीमती केसर देवी, महेन्द्रगढ़, हरियाणा, ३६. श्री ब्रह्मदत्त, नई दिल्ली, ३७. श्री हनुमान शाह, ग्वालियर, म.प्र., ३८. श्री पुखराज सोनी, अजमेर, ३९. श्रीमती अर्चना माथुर, कोटा, राजस्थान, ४०. श्रीमती शकुन्तला आर्या, होशंगाबाद, म.प्र., ४१. श्री निर्मल गुलाटी, दिल्ली, ४२. जैनिथ एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली, ४३. श्री रमेश मुनि, अजमेर, ४४. श्री अनिल गुप्ता, अजमेर, ४५. श्रीमती जयाबेन, यू.के., ४६. श्री राम नरदुला, ४७. श्रीमती वीणा शृंगी, कोटा, राजस्थान, ४८. श्रीमती अरुणा भागोत्रा, जम्मू, ४९. श्रीमती सुशीला देवी झा, दिल्ली, ५०. श्री प्रताप कुमार साधक, लखनऊ, उ.प्र., ५१. श्री व्रतमुनि, अजमेर, ५२. श्री सुरेश कुमार, भिवानी, हरियाणा, ५३. श्री माँगीलाल आर्य, सिहोर, म.प्र., ५४. श्री कर्मवीर शौकिन, गुड़गाँव, हरियाणा, ५५. श्री गौतम सैनी, गुड़गाँव, हरियाणा, ५६. श्री राजेश कुमार, नई दिल्ली, ५७. श्रीमती कुमुदिनी आर्या, अजमेर, ५८. श्री चन्द्रभानु, गुड़गाँव, हरियाणा, ५९. श्री घनश्याम कुंगवानी, सूरत, गुजरात, ६०. सुविरा एमबेसेंज, लातूर, महाराष्ट्र, ६१. श्री सुरेन्द्र सिंह, नागौर, राजस्थान, ६२. सुश्री सरला महेश्वरी, कड़ैल, राजस्थान, ६३. माता चम्पादेवी तोषनिवाल, ब्यावर, राजस्थान, ६४. श्री दयानन्द शर्मा, दक्षिण आफ्रिका, ६५. श्री राजीव विश्नोई, लखनऊ, उ.प्र., ६६. ब्र. वामदेव, अजमेर, ६७. सुश्री निवेदिता, जयपुर, राजस्थान, ६८. श्री रविन्द्र, निजामाबाद, आ.प्र., ६९. श्रीमती कविता प्रवीण, निजामाबाद, आ.प्र., ७०. श्री रामकुमार, कोटपूतली, राजस्थान, ७१. श्री योगमुनि, अजमेर, ७२. श्री आकर्ष, बैंगलोर, ७३. श्री रामभज मदान, नई दिल्ली, ७४. श्री ओमशरण, फिरोजाबाद, उ.प्र., ७५. मन्त्री आर्यसमाज सुमेरपुर, राजस्थान, ७६. श्री ध्यानेन्द्रमुनि, लखनऊ, उ.प्र., ७७. श्रीमती सौम्या रितिका, लखनऊ, उ.प्र., ७८. श्री रतनलाल सैनी, हिसार, हरियाणा, ७९. श्रीमती शान्ति आर्या, जोधपुर, राजस्थान, ८०. श्रीमती वीणा देवी, रोसड़ा, ८१. मन्त्री आर्यसमाज अकोला, महाराष्ट्र, ८२. श्री सुरेन्द्र कुमार, सोनीपत, हरियाणा, ८३. श्री वीर वाधवा, होरड़ा, म.प्र., ८४. मन्त्री आर्यसमाज कालका, नई दिल्ली, ८५. श्रीमती उषा देवी, गया, बिहार, ८६. आर्यसमाज व गुरुकुल सोनाखार छिन्दवाड़ा, म.प्र., ८७. श्रीमती वीणा शर्मा, गाजियाबाद, उ.प्र., ८८. श्रीमती पूजा विकास आर्या, पूना, महाराष्ट्र, ८९. श्री वासुदेव आर्य, अजमेर, ९०. श्रीमती पुष्पा देवी, पाटन, गुजरात, ९१. श्रीमती कमला आर्या, जोधपुर, राजस्थान, ९२. श्री चान्दमल साहू, छोटी सादड़ी, राजस्थान, ९३. श्री जे.पी. शर्मा, अजमेर, ९४. मास्टर राजेन्द्रसिंह, बिघल, हरियाणा, ९५. आर्यसमाज सरणी, बेतुल, म.प्र., ९६. श्री अनन्तदेव इन्द्रदेव शर्मा, उदयपुर, राजस्थान, ९७. श्री देवदत्त ब्रह्मदत्त जांगिड़, अहमदाबाद, गुजरात, ९८. श्री गौतम सचदेवा, नई दिल्ली, ९९. डॉ. शशि प्रभा कुमार, नोएड़ा, उ.प्र., १००. श्री यशवन्त मेहता, १०१. श्री यशपाल आर्य, दिल्ली, १०२. श्रीमती सुशीला, जोधपुर, राजस्थान, १०३. श्री सुधीर कुमार, जोधपुर, १०४. श्री कालूराम सोनी, उदयपुर, राजस्थान, १०५. श्री हीरालाल आर्य, गोरखपुर, उ.प्र.।

–परोपकारिणी सभा, अजमेर।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर

(अथर्ववेद ३.२४.५)

(सौ हाथों से कमाओ, हजार हाथों से दान करो।)

ओडिशा पीड़ितों की सहायता के लिए अपने हाथ बढ़ाइये

आप सबको विदित है कि देश के अनेक भागों में बाढ़ का प्रकोप चल रहा है, जैसा कि उत्तराखण्ड में बाढ़ का भीषण प्रकोप हुआ था। १२/१०/२०१३ एवं १३/१०/२०१३ को ओडिशा आन्ध्र प्रदेश के समुद्र तटीय पर तूफान आया। ओडिशा के गोपालपुर क्षेत्र गन्जाम जिले में बहुत जन हानि हुई। घरबार उजड़ गये। खेत नष्ट हो गये। मकान धराशायी हो गये। ग्रामीण जन बेघर हो गये। ऐसे में उनको आर्थिक सहयोग की आवश्यकता है। अत: श्रद्धानुसार सहयोग की अपेक्षा है। यातायात व संचार व्यवस्था टूट गई। जिन लोगों के घर बह गये हैं, जिनके परिजन बिछड़ गये हैं, जो आज जीवन-यापन के साधनों का अभाव झेल रहे हैं, उन्हें आवास, भोजन, चिकित्सा के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

गरीब असहाय लोगों तक पहुँच कर उनकी सहायता, सहयोग करना, सभी देशवासियों का कर्त्तव्य है। इस कार्य के लिए परोपकारिणी सभा का सेवादल ओडिशा में पहुँच गया और युवा लोग सेवा कार्य में जुट गये हैं।

हम सब मिलकर इस कार्य को आगे बढ़ायें। अत: हमारा सबका कर्त्तव्य है तन-मन-धन से इस कार्य में सभा की सहायता करें। आप जितनी शीघ्रता से अपना सहयोग प्रदान करेंगे हम उतनी शीघ्रता से उसे पीड़ितों तक पहुँचा सकेंगे।

आप अपना धन-बाढ़ पीड़ित सहायता कोष में भेजें। धन भेजने का पता निम्न प्रकार है-

१. बैंक खाता संख्या - 091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जो कार्यालय में आकर देना चाहे वे कार्यालय समय में १०.३० से ५.३० बजे तक कार्यालय परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज. पर देवें। अन्य समय में ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर सम्पर्क कर अपना सहयोग जमा करा सकते हैं।

जो बैंक में राशि जमा कराना चाहें वे उपरोक्त पते पर जमा करा सकते हैं।

दिल्ली व आसपास के लोग अपनी सहायता निम्न पते पर दे सकते हैं-

श्री सत्यानन्द आर्य,
रोड़ सं. ४६-ए, आर्यसमाज मन्दिर,
पंजाबी बाग पश्चिम, दिल्ली।

एवं सहयोग जमा कराकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

आपके सहयोग की प्रतीक्षा में **परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

सम्पर्क : दूरभाष-०१४५-२४६०१६४, ईमेल-psabhaa@gmail.com

पुस्तक-परिचय

१. पुस्तक का नाम- मेरे अनुभव मेरा चिन्तन
लेखक- प्रो. राम विचार एम.ए.,
प्रकाशक- विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सडक, दिल्ली-११०००७
मूल्य- १००, **पृष्ठ सं.**- १९२

जीवन अमूल्य है। मूल्यवान तब बनता है जब घटनाओं, किसी के कथनों, सहयोग, मार्गदर्शन, दु:ख आदि के माध्यम से जीवन में बाधायें आती हैं, कष्ट भोगने पडते हैं, कई बार निराशा ही हाथ लगती है। हम किसी से अपेक्षा करते हैं वह भी निर्मूल हो जाती है। सहारा तो तिनके का भी बहुत होता है। कभी कभी परिस्थिति बन जाती है जो हमें निराशा की ओर धकेल देती है ऐसे में कवि की पंक्तियाँ याद आती हैं-

नर हो न निराश करो मन को,
जग में रहकर कुछ काम करो। कुछ काम करो।

लेखक को शत्रु भी मिले, तो सहयोगी भी मिले। भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग परिस्थितियाँ बनती गई, उसी के अनुरूप सहयोगी व शत्रु रहे। ऐसा भी अवसर आया कि अधिकारी के अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात होने से मुझे पद से हटना पडा। मैंने जीवन में हार नहीं मानी। इस कारण लेखक के 'मेरे अनुभव मेरा चिन्तन' अवश्य पढना चाहिए। ये मोड सभी के जीवन में आते हैं अत: जीवन परिस्थितियों के अनुकूल कैसे सामान्य रह सकता है। आद्योपान्त अध्ययन से अनेक अनुभवों का परिचय होगा। कागज व मुद्रण अच्छा है।

पुस्तकों की समीक्षा

३. १. भक्ति चालीसा २. कष्ण चालीसा ३. शिव चालीसा ४. यज्ञ चालीसा ५. ओ३म् चालीसा ६. राम चालीसा ७. हनुमान चालीसा ८. दयानन्द चालीसा ९. ईश्वर चालीसा १०. वेद चालीसा

१. दु:खों से मुक्ति २. जीवन का उद्देश्य ३. पञ्च यज्ञ महिमा ४. आर्य समाज महिमा ५. दयानन्द महिमा
लेखक - डॉ. वेद प्रकाश,
प्रकाशक - वैदिक धर्म संस्थान, वेद मन्दिर, एन-एच १६ पल्लवपुरम-२ मेरठ,
मूल्य - १५ से २५ रुपये तक

आज समाज में साहित्य की भरमार है। साहित्य जीवन निर्माण व प्रेरणादायी हो। साहित्य से ज्ञान की उपलब्धि होती है। गद्य व पद्य की धाराएँ भिन्न होती हैं। पद्य को समझना कठिन होता है। डॉ. वेद प्रकाश जी ने १० चालीसा लिखकर पाठकों को सामग्री प्रस्तुत की है। रचना शब्दों में है। पहले हनुमान चालीसा से लोग परिचित है किन्तु लेखक ने कई चालीसायें लिख दी। प्रत्येक चालीसा अपना यथा नाम से अपनी भाव शैली को प्रेषित करती है।

इसी क्रम में दु:खों से मुक्ति, जीवन का उद्देश्य, पञ्च यज्ञ महिमा, आर्यसमाज महिमा, दयानन्द महिमा काव्य रूप में है। लय, भाषा सरस है। आज छोटी पुस्तकें सहजता में पढनें में आ जाती हैं। सभी वर्गों के लिए उपयोगी हैं उपयोगी अवसरों पर वितरण के लिए भी अच्छी हैं। थोडे पैसे में अधिक लाभ।

देवमुनि, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

२. नाम- पाणिनीय-त्रिपाठी,
संस्करण - प्रथम,
पृष्ठ- २६४, **मूल्य**- ९०/-
सङ्कलयिता, सम्पादक, प्रकाशक- आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश।

संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अनेकों वैज्ञानिक, भाषा विशेषज्ञ इस पर शोध कर रहे हैं व वहाँ के अनेकों विश्वविद्यालयों में अनिवार्य विषय के रूप में भी इसे पढ़ाया जा रहा है। आज ब्रिटेन के अन्दर लगभग ३०० छात्र नगर से दूर, शुद्ध, शान्त, गुरुकुलीय परम्परा के अनुसार वातावरण में संस्कृत भाषा को संगणक (कम्प्यूटर) के लिए सर्वश्रेष्ठ उपयुक्त भाषा मानते हुए व इसके सूत्रों की रचना पर शोध कर रहे हैं।

हजारों वर्ष पूर्व इसी संस्कृत भाषा, संस्कृत व्याकरण को सहजता व अल्प समय में ज्यादा समझने के लिए महर्षि पाणिनि ने पाँच ग्रन्थों अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिकोष, लिङ्गानुशासन की सूत्रों में रचना की। इन्हीं पांच ग्रन्थों में से अष्टाध्यायी, उणादिकोष व लिङ्गानुशासन के सूत्रों को उदाहरण सहित आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश जी ने इस पुस्तक में संकलन किया है। अभी तक इन ग्रन्थों को स्मृति में रखने के लिए पहले सूत्रों को याद करना, अर्थ व उदाहरण जानने के लिए भाष्य को पढना पड़ता है। लेकिन इस पुस्तक को प्राप्त करके नव संस्कृत ज्ञान पिपासु, गुरुकुल के विद्यार्थी अत्यन्त लाभान्वित व सहजता महसूस करेगें क्योंकि इसमें सूत्रों के सम्मुख ही क्रम संख्या से उनके कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। सामने अंकित उदाहरणों को देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति उस सूत्र के अर्थ को भी सरलता से समझ सकते हैं।

अधिकांश गुरुकुलों में विद्यार्थी अष्टाध्यायी को स्मरण करने के लिए बहालगढ, रेवली से प्रकाशित पुस्तक का आश्रय लेते हैं। जिससे उस पुस्तक की पंक्तियाँ, सूत्रों की चित्रावली, क्रम छात्रों के मस्तिष्क में छप जाती है। उसी क्रम व पंक्तियों को यथावत् इस पुस्तक में रखा गया है, जिससे छात्रों को असुविधा न हो। इस पुस्तक के पृष्ठों का दो विभाजन किया गया है, जिसमें बायीं तरफ मूलसूत्र व दायीं तरफ उन सूत्रों के उदाहरण क्रमशः दिये गये हैं। अष्टाध्यायी सूत्रपाठ के अन्तर्गत अधिकांश उदाहरणों को रेखांकित किया गया है, जिससे पाठक यह जानें कि उस शब्द में उस सूत्र का प्रयोजन, अर्थ सिद्ध हो रहा है। पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ - ५ पर व्याकरण का प्रयोजन व महत्त्व क्या-२ है, उसके लिए अनेकों जगहों से संग्रहीत श्लोक प्रस्तुत किये गये हैं।

अन्त में पृष्ठ - २२८ पर इस पुस्तक के अन्दर क्या-क्या है? कितने-कितने विभाजन हैं? कितने पाठ हैं? यह सब बहुत रोचक ढंग से श्लोकबद्ध किया हुआ है। तत्पश्चात् चार चांद लगाती हुई अष्टाध्यायी सूत्र और उणादि सूत्र वर्णानुक्रमणिका और परिशिष्ट में पिट्सूत्र पाठ अर्थात् कौन-कौन से शब्द उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं, उसका विवरण देकर समाप्त किया गया है। पुस्तक का कागज व सम्पादन उत्कृष्ट है परन्तु अक्षर कुछ छोटे हैं। मूल्य न्यून ही है। यह पुस्तक प्रत्येक गुरुकुल संस्था व पुस्तकालयों में रखने योग्य है।

ब्र. अमित आर्य, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय,
हिसार, हरियाणा

गायत्री - मन्त्र

- सुकामा

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

गायत्री मन्त्र का हमारी वैदिक परम्परा में विशिष्ट स्थान है। यहाँ प्रचलित हिन्दी पद्यानुवाद- 'तूने हमें उत्पन्न किया...' के अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू में पद्यानुवाद दिए जा रहे हैं- जिन्हें हम अपनी उपासना में शामिल कर सकते हैं-

हिन्दी पद्यानुवाद

ओंकार आद्य अक्षय अद्वैत अज अनुपम।
अद्भुत अजर अजन्मा अव्यय अनघ अनुपम
हो 'सत्य' रूप स्वामी! 'चित्' चारू चेतधारी
'आनन्द' ओजमय हो, आदर्श आर्तहारी
प्राणेश! प्रार्थना है, पथ पुण्यमय दिखाओ
मिथ्या ममत्व मत्सर मल मोह मद मिटाओ
सेवा-सुमन पिरोकर माला महत् बनाऊँ
अनुराग-भावना से भगवान् पर चढ़ाऊँ
मुद मांगलिक मगसे मैं मोक्षधाम जाऊँ
सर्वोच्च शान्ति सुखकर सात्त्विक समृद्धि पाऊँ
विश्वात्मा! विनय है, वर दीजिए विचारी
धी धर्ममय धवल हो ध्रुव धैर्य ध्यानधारी।

English Translation

O soul of life, the holy king of kings!
O God of all the regions, high and low,
O lord of joy, where glory nature sings,
Shapes who aliped the earth & let the mortals grow.
We seek thy blessed feet to meditate
Upon thy glorious form of holy light
which drives away the gloom of sins we hate
and makes the souls of righteous people bright.
My heart, O Father, meekly prays to three.
To win thy grace, to make me good & wise
And bless my mind with knowledge, full and free
From dark and vicious thoughts of sins & lies.

उर्दू तर्जुमा

वो खुदा ए पाक़ वो जाने जहाँ,
वो नफस की आपदो शुद का जमाँ
ज़ात जिसकी दर्द ओ दुःख से है बरी,
दूर सब दुःख दर्द करता है वो ही
चश्मा है वो राहते ज़ावेद का
राहतें करता है वो सबको अता
पाक खुद असियाँ से वो करता है पाक़,
है बसद शाने तज्ज़ाली ताबेनाक़
करके उस नूरे-अज़ल का ध्यान हम,
मांगते हैं ये दुआ हर आन हम,
दे हमारी अक़्ल को सिदक-ओ सफा,
और इसे नेकी के रस्ते पर चला।

ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

जिज्ञासा समाधान - ५४

-आचार्य सोमदेव

आदरणीय आचार्य जी! सादर नमस्ते।

मेरी निम्नलिखित जिज्ञासायें हैं, कृपया भविष्य में आने वाली पत्रिका में समाधान देकर अनुग्रहित करेंगे।

जिज्ञासा १. कुछ आर्य समाजी अपने नाम के साथ आर्यरत्न लिखते हैं, यह कहाँ तक उचित है?

२. सामान्यत: दैनिक, साप्ताहिक हवन के समय थाली प्रथा प्रचलित है जिसमें आगन्तुक अपनी श्रद्धानुसार धनराशि देते हैं, इस विषय में अपने विचारों से अवगत करायें।

३. सामान्यत: दैनिक, साप्ताहिक यज्ञ में पुरोहित, यजमान उपस्थित व्यक्तियों को रोली, हल्दी से तिलक करते हैं तथा हाथ में रक्षा सूत्र (कलावा) भी बान्धते हैं। वैदिक साहित्य इस विषय में क्या बताता है?

४. यज्ञ में आये तमाम व्यक्ति, आर्य समाजी अपने हाथ की उंगलियों में विभिन्न प्रकार की अंगुठियाँ पहने हुए होते हैं। इससे प्रदर्शित होता है कि उन व्यक्तियों में आर्य समाजी की आन्तरिक चेतना नहीं है। मात्र बाह्य रूप से आर्य समाजी हैं।

- डॉ. लक्ष्मणसिंह टांक, पूर्व प्राचार्य, ५१ देवपुरम्, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

समाधान- १. जिन आर्य-समाजियों को, आर्यों को उनकी योग्यता के अनुसार, किसी संस्था विशेष ने आर्यरत्न की उपाधि से विभूषित किया है तो वह अपने नाम के पीछे आर्यरत्न लगा सकता है, इसमें कोई हानि नहीं है। जैसे किसी ने महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि से जो एम.ए., एम.टेक, डी.लिट्., एडवोकेट, डॉक्टर आदि उपाधियाँ प्राप्त की हैं उनको वह अपने नाम के आगे-पीछे लगा सकता है और भी-जैसे शास्त्रीय जगत् में जिसने जो शास्त्र पढ़े हैं, उसके कारण उनको जो व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य, न्यायरत्न, मीमांसक, विद्यावारिधि, विद्यावाचस्पति आदि उपाधियाँ प्राप्त की हैं, उनको अपने नाम के आगे-पीछे लगाते हैं, लगा सकते हैं। हाँ ये उपाधियाँ दूसरों को अपने परिचय के लिए लगाना तो हो सकता है, किन्तु इनको दिखावे, प्रदर्शन, ऐषणा पूर्ति के लिए लगाना ठीक नहीं। इसी प्रकार आर्य रत्न की बात है, इसको भी ऐसे ही समझना चाहिए।

२. यह थाली प्रथा ठीक प्रतीत नहीं होती। यह पौराणिकों से आर्य समाज में आयी लगती है। इस थाली प्रथा के अनुसार थाली में पैसे डालने से कोई श्रद्धा भी प्रकट नहीं होती। महर्षि दयानन्द ने तो आर्यसमाज में आर्य सदस्यों को अपनी आय का दशांस देने को कहा है। यदि सदस्य गण दशांस देते हैं तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। थाली प्रथा में प्राय: लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार पैसे नहीं रखते, कम ही रखते हैं फिर इसको श्रद्धानुसार कैसे कह सकते हैं। श्रद्धानुसार तो दशांस या उससे अधिक देना है, कम नहीं। इस थाली प्रथा को छोड़ कर किसी दिन विशेष पर इकट्ठा अपने दान को दे देना, रसीद कटवा लेना ही अच्छा है।

३. रोली, हल्दी से तिलक करना और हाथ में धागा बान्धना भी पौराणिकों से ही आया है। इसके लिए किसी वैदिक साहित्य में पढ़ने-सुनने को नहीं मिला, न ही मिलता है। जिस-किसी को किसी आर्ष ग्रन्थ में मिला हो तो अवश्य अवगत करावे। पूना प्रवचन ५ व सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११ में महर्षि दयानन्द ने इन तिलकादियों का खण्डन अवश्य किया है। हमारे पुरोहित आदि सिद्धान्तों को ठीक तरह न जानने के कारण, दक्षिणा अधिक प्राप्ति के कारण अथवा अपने यजमान को प्रसन्न करने के लिए करते हैं, सो उचित नहीं। ऐसे ही यज्ञ के ब्रह्मा आशीर्वाद देने के लिए सभी आगन्तुकों को बुलाते हैं, फल आदि प्रसाद रूप में देते हैं, यह भी द्रव्य हरण के लिए ही है। यजमानों को आशीर्वाद देना चाहिए, दिया जाता है सो उचित है।

यज्ञ-विषयक विधि-विधान संस्कार विधि अथवा यज्ञ गोष्ठियों में वैदिक विद्वानों द्वारा निर्णीत क्रिया कलाप के अनुसार करना चाहिए, अन्यथा मनमाने ढंग से नहीं। यदि यजमान पौराणिकों के प्रभाव से इस विषय में अज्ञानी हैं तो उनको सरलता से वैदिक रीति बताई जा सकती है, बतानी चाहिए। ऐसा ही पुरोहित आदि को करना उचित है, मिथ्या अवैदिक रीति को न करे, न चलावे।

४. अंगुठी पहनने मात्र से ऐसा नहीं कह सकते कि उनके अन्दर आर्य समाज के प्रति चेतना भाव नहीं है और न ही सभी लोग बिना चेतना भाव वाले हो सकते। चारों आश्रमों में से गृहस्थ को आभूषण पहनने, धारण करने की छूट है, वह अच्छे-अच्छे आभूषण धारण कर सकता है। आपने लिखा विभिन्न प्रकार की अंगुठियाँ.....। विभिन्न प्रकार की से यदि विभिन्न नगों वाली से है और उन नगों के प्रभाव से है तो इस प्रकार की भावना से युक्त होकर अंगुठी पहनना ठीक नहीं। उन नगों से अपने हानि-लाभ में प्रभाव मानना मिथ्या धारणा है और आर्य समाजी इस

प्रकार की मिथ्या धारणा को नहीं पालता। यदि यही मिथ्या धारणा रखते हुए अंगुठियाँ पहनता है तो अवश्य ही उसकी आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रति आन्तरिक चेतना न्यून है।

जिज्ञासा २- महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय प्रकरण में लिखा है- ''दोनों स्तनों के बीच में उदर के ऊपर जो गर्त है.... वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है।''

आचार्य उदयवीर शास्त्री अपने 'ब्रह्म सूत्र' भाष्य में वह स्थान दहराकाश मस्तिष्क मूर्धा में बताते हैं।

महात्मा नारायण स्वामी भी 'उपनिषद् रहस्य' में वह स्थान मस्तिष्क में ही बताते हैं।

ऐसे में किस वक्तव्य को प्रामाणिक मानकर उपासना की जाये कृपया शंका समाधान करने का कष्ट करें।

- महावीर सिंह, ३२, अर्जुन नगर, बलवन्त नगर के पीछे, ग्वालियर-४७४००२ (म.प्र.)

समाधान- आप उपासना करने के लिए हृदय स्थान के विषय में जानना चाहते हैं। इस विषय में विद्वानों में मति भेद है। फिर भी जब कभी ऐसा संदेह हो कि इनमें कौन ठीक है तो उनमें अधिक विद्वान्, तपस्वी, वीतराग, परोपकारी हो उसी को मानना चाहिए। इसमें जो महर्षि दयानन्द की मान्यता है उसी को हम भी मानते हैं। महर्षि ने स्पष्ट शब्दों में अपनी मान्यता को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना प्रकरण में कहा है, वही उचित और युक्ति संगत प्रतीत होता है। आपने वह प्रकरण पढ़ा हुआ है फिर भी अन्य पाठकों की दृष्टि से लिखते हैं ''जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें, उस समय इस रीति से करें कि कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश्म अर्थात् अवकाश रूप एक स्थान है और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।'' इसमें महर्षि का स्पष्ट संकेत है, महर्षि की मान्यता है छाती के बीच हृदय स्थान है। इससे रक्त को पम्प करने वाला दिल (हार्ट) भी ग्रहित नहीं हो सकता क्योंकि उसका स्थान छाती के बीच न होकर बाईं ओर है। युक्ति से भी यही स्थान हृदय प्रतीत हो रहा है। जब कोई अपने को हाथ से संकेत करते हुए मैं कहता है तब कोई भी माथे (मस्तिष्क) पर हाथ वा अंगुली लगाते नहीं दिखता, हाँ छाती पर हाथ वा अंगुली लगा संकेत अवश्य दिखता है। जब कभी हर्ष वा शोक की अनुभूति होती है तब भी उसी स्थान पर अनुभूति प्रतीत होती है, क्योंकि यही हृदय स्थान जीवात्मा का निवास स्थान प्रतीत होता है। इसलिए ध्यान उपासना के लिए यही हृदय स्थान ठीक है, इसी को मानकर उपासना करनी चाहिए।

ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में पिछले लगभग एक वर्ष से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। ऋषि उद्यान में रह रहे डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**
बैंक खाता संख्या-**10158172715**
IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाऊस के सामने, जयपुर रोड़, अजमेर।
बैंक खाता संख्या-**091104000057530**
IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें अन्यथा व्यक्ति के नाम से शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। परोपकारिणी सभा आप सभी का सहयोग चाहती है।

संस्था-समाचार

१ से १५ दिसम्बर २०१३

१. डॉ. धर्मवीर जी का प्रचार कार्यक्रम- सम्पन्न कार्यक्रम- (क) १ दिसम्बर- उज्जैन निवासी ओमप्रकाश जी अग्रवाल की विवाह स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर यज्ञ एवं उपदेश, आर्यसमाज उज्जैन के लोगों से सम्पर्क, सत्संग आदि।

(ख) २ दिसम्बर- कोरसा, मुरैना में लोगों से सम्पर्क।

(ग) ३ से ५ दिसम्बर- आर्ष गुरुकुल नर्मदापुरम्, होशंगाबाद में यज्ञोपरान्त उपनिषद्-चर्चा।

(घ) ६ से ९ दिसम्बर- आर्यसमाज वृज विहार, दिल्ली में सत्संग।

(ङ) ९ से १५ दिसम्बर- आर्यसमाज कृष्णानगर, दिल्ली में वेद सप्ताह के अन्तर्गत वेदकथा की।

आगामी कार्यक्रम- (क) २ से ५ जनवरी २०१४- बिलासपुर, छ.ग. में प्रवचन।

(ख) ९ से १२ जनवरी- सिलीगुड़ी, पश्चिम बंगाल में प्रवचन।

(ग) २० से २१ जनवरी- पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में।

(घ) २८ से २९ जनवरी- भिण्ड, म.प्र. के कार्यक्रम में।

२. पं. नौबतराम जी का प्रचार कार्यक्रम- सम्पन्न कार्यक्रम-(क) १६ नवम्बर २०१३- ऋषि उद्यान से पाली, राजस्थान के लिए प्रस्थान।

(ख) १७ नवम्बर २०१३- स्वामी ऋतमानन्द वैदिक गुरुकुल आश्रम में आर्यों से सम्पर्क।

(ग) १८ से २१ नवम्बर २०१३- पाली नगर के विभिन्न आर्य परिवारों में यज्ञ एवं प्रवचन का कार्यक्रम किया।

(घ) २२ से २६ नवम्बर २०१३- पाली से मारवाड़ होते हुए जड़ौदा पहुँचे, पुनः जड़ौदा, कोजोजावर आदि में सत्संग व सम्पर्क का कार्यक्रम।

(ङ) २८ नवम्बर से १ दिसम्बर २०१३- पाली में पुनः पधारकर प्रचार कार्य, पुनः पाली से चलकर २ दिसम्बर को ऋषि उद्यान वापस पहुँचे।

३. आचार्य सानन्द जी का प्रचार कार्यक्रम-आगामी कार्यक्रम- १ से ३० जनवरी २०१४ तक ग्राम कौल, कुरुक्षेत्र, हरियाणा में पधारकर, प्रतिदिन प्रातः ५ से ६ बजे के मध्य ध्यान का प्रायोगिक प्रशिक्षण व इससे सम्बन्धित विषयों पर उद्बोधन तथा रात्रि में ८ से ९ बजे के मध्य धर्म के स्वरूप विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।

४. यज्ञ एवं प्रवचन- जैसा कि विदित है कि ऋषि उद्यान आर्यजगत् के उन स्थानों में से एक है, जहाँ पूरे वर्ष दोनों समय अपरिहार्य रूप से यज्ञ एवं प्रवचन का कार्यक्रम होता है। प्रातःकाल यज्ञोपरान्त वेद के कुछ मन्त्रों का पाठ तथा पूर्व निर्धारित मन्त्र का महर्षि दयानन्द कृत भाष्य का स्वाध्याय भी किया जाता है। प्रातः प्रवचन के क्रम में १ से १३ दिसम्बर तक श्रोताओं को आचार्य सत्येन्द्र जी के उद्बोधन का लाभ मिला।

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम्।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम्।।

– ऋ. २/२४/६

इस उपरोक्त मन्त्र के महर्षि दयानन्द कृत भाष्य की व्याख्या करते हुए आचार्य जी ने बताया कि वे मनुष्य जो पदार्थों को जैसा वे हैं उन्हें उसी रूप में जानकर स्वयं अधर्माचरण से पृथक् रहते हैं और अन्य लोगों को भी ऐसा ही करने की प्रेरणा देते हैं, वे स्वयं भी अत्यन्त आनन्दित होकर, अन्यों को भी आनन्द देते हैं। यहाँ समझने वाली बात यह है कि जो व्यक्ति ईश्वर की आज्ञा का जितना अधिक पालन करते हैं अर्थात् पदार्थों को उनके यथार्थ स्वरूप में जानते हैं व अधर्माचरण से अलग धर्म का ही आचरण करते हैं, उन्हें ईश्वर की ओर से उतना ही अतिरिक्त सहयोग मिलता है और ऐसे धर्मप्रेमी जन स्वयं तो आनन्दित होते ही हैं, औरों को भी आनन्दित करते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने इसके भाष्य में लिखा है कि "जो यथार्थ-विज्ञान को पाकर अधर्माचरण से पृथक् रहकर अन्यों को पापाचरण से पृथक् कर फिर धर्म, विद्या, शरीर, आत्मा की पुष्टि में प्रवेश कराते, वे अत्यन्त आनन्द को पाकर औरों को आनन्दित करने को समर्थ होते हैं।"

आचार्य जी ने बताया कि एक ओर जहाँ हमारा यह चिन्तन है कि स्वयं आनन्दित होकर दूसरों को भी आनन्दित किया जाए, वहीं पश्चिमी जगत् में अधिकांश व्यक्ति इस मानसिकता के साथ जीवन व्यतीत करते हैं कि 'बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है' अर्थात् किसी भी सीमा तक जाकर अपना स्वार्थ साधना ही उचित है। यह मानसिकता मनुष्य को पशुता की ओर ले जाती है। धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है, क्योंकि आहार, निद्रा, मैथुन तथा बलशाली से डरकर निर्बलों को डराना/मारना पशुओं का स्वभाव है, इसके विपरीत मनुष्य तो वही है जो इन (आहारादि) में धर्म-पूर्वक विचरता है अर्थात् जो धर्मपूर्वक आहार-विहार, सन्तानोत्पत्ति करता है तथा धार्मिक निर्बलों

से भी डरता है लेकिन कितने ही बलशाली अधार्मिक हों, उनसे नहीं डरता, अत: कवि ने कहा है कि-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना: पशुभि: समाना।।

पुन: आचार्य जी ने बताया कि जिन मनुष्यों में समझदारी, जिम्मेदारी, ईमानदारी व बहादुरी ये चार गुण होते हैं, वे किसी भी कार्य को प्रारम्भ कर उसकी परिणति तक पहुँचा देते हैं, वे ही उत्तम जन कहलाते हैं तथा संसार में विरले ही होते हैं। नहीं तो संसार में, भविष्य में आने वाली बाधाओं से पूर्व में ही भयभीत होकर कार्य प्रारम्भ न करने वाले निम्न कोटी के मनुष्य तथा कार्य को बाधाओं के कारण मध्य में ही छोड़ने वाले मध्यकोटि के मनुष्य भी बहुतायत में मिलते हैं। अत: कवि कहता है कि-

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै:,
प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्या:।
विघ्नै: पुन: पुनरपि प्रतिहन्यमाना:,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।।

पुन: आचार्य जी ने बताया कि संसार में ऐसी विचारधारा के लोग भी हैं जो संसार को पूरी तरह छोड़ने की, इसकी पूर्ण उपेक्षा करने की बात करते हैं, इसके विपरीत वैदिक मत संसार को मुक्ति के साधन के रूप में स्पष्ट व्याख्यायित करता है। जैसे हमारे यहाँ धन कमाने की मनाहि नहीं है, अपितु वेद का आदेश है कि बड़े से बड़े स्तर पर धनादि का अर्जन किया जाए, लेकिन यह धन, धर्म पूर्वक कमाया जाना चाहिए। यदि व्यक्ति अधर्मपूर्वक धन कमाता है तो यह धन उसके नाश का ही कारण बनता है। धर्मपूर्वक धन कमाना ही श्रेष्ठ है इसके साथ-साथ इसे धर्मपूर्वक खर्च करना भी आवश्यक है। कुछ व्यक्ति धन विपुल मात्रा में कमा तो लेते हैं लेकिन इसे खर्च नहीं कर पाते, या खर्च करने में कंजूसी करते हैं। आचार्य जी ने एक हास्य कथा के माध्यम से विषय को स्पष्ट करते हुए बताया कि 'एक सेठ जी गर्मी के दिनों में अपने घर के बरामदे में बिना पंखा चलाए बैठे थे, घर के सामने सड़क थी तथा सड़क की दूसरी ओर पुन: मकान थे। किसी राहगीर ने सेठ जी से पूछा कि 'इतनी गर्मी में भी आप पंखा आदि क्यों नहीं चलाते? तो सेठ जी ने कहा कि जो वो सामने घर दिखाई दे रहा है, उसमें पंखा चल रहा है, उसकी हवा से ही काम चल जाता है, तो मुझे पंखा चलाने की क्या आवश्यकता?' शास्त्रों में धन की तीन ही गतियाँ बताई गई हैं- दान, भोग व नाश। जो व्यक्ति धर्मपूर्वक न तो दूसरों को दान देते हैं और न ही इस धन का स्वयं उपभोग करते हैं तो उनका धन निश्चित ही नाश रूपी तीसरी अवस्था को प्राप्त होता है।

१४ दिसम्बर को जालन्धर, पंजाब से पधारी प्रधानाध्यापिका डॉ. रश्मि जी विज ने श्रोताओं को 'आधुनिक मनोविज्ञान' विषय पर व्याख्यान दिया। आपने बताया कि 'मनोविज्ञान' भी विज्ञान ही है जिसमें मानव-मन का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान में वर्तमान समय में यद्यपि 'फ्राइड' के सिद्धान्त गलत साबित हो चुके हैं लेकिन उनकी विद्वत्ता तथा जितनी गहनता से उन्होंने इस विषय का अध्ययन किया अत: आज भी नए विद्यार्थी को इनके सिद्धान्तों से परिचित कराया जाता है। विज्ञान की और शाखाओं में विकल्प कम होने से उनका विकास अधिक तीव्र गति से हो पाया है। जैसे रसायन विज्ञान में किसी द्रव्य के निश्चित गुण होते हैं, उनसे जब कोई निश्चित द्रव्य मिलाया जाता है तो वे एक निश्चित प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन मानव-मन ऐसी अद्भुत चीज है कि एक ही व्यवहार के प्रति हर व्यक्ति को अलग-अलग प्रतिक्रिया होती है। अत: किसी क्रिया की असंख्य प्रतिक्रियाएँ होने की सम्भावना के कारण तथा इन प्रतिक्रियाओं के पुन: असंख्य कारणों के कारण आधुनिक मनोविज्ञान में 'इदम्-इत्थम्' नियम नहीं बन पाते। अत: विज्ञान की और शाखाओं की अपेक्षा इस शाखा का कम विकास हो पाया है।

१५ दिसम्बर को जयपुर राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के द्रव्यगुण विज्ञान-विभाग के सहआचार्य डॉ. मोहनलाल जी जायसवाल ने यज्ञोपरान्त आयुर्वेद-परक अपने वक्तव्य से लोगों का मार्गदर्शन किया। आपने बताया कि '**सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:**' को ही आयुर्वेद में '**स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य विकारप्रशमनम्**' के रूप में कहा गया है। आपने हरीतकी (हरड़), आमलकी (आंवला), बहेड़ा, अदरक, हल्दी, गिलोय आदि वनस्पतियों का तथा केसर, गुडहल, गेंदा, निम्ब, हरश्रृंगार आदि पुष्पों की ऋतु अनुसार सेवन विधि तथा उससे होने वाले लाभों को बताया।

सायंकालीन सत्र में आचार्य कर्मवीर जी ने सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय करवाते हुए बताया कि-

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि देव दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में मानव जीवन के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए हर उस बिन्दु पर प्रकाश डाला है, जिसे जानकर व्यवहार में लाकर प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन की उन्नति कर जीवन को सुखमय बना सकता है। सत्यार्थ प्रकाश के चौदह समुल्लासों में अलग-अलग विषय व उनमें भी अन्तरंग विषयों को लेकर, मानव जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है, यथा पहले समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या, दूसरे समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा विषय, भूत-

प्रेतादि निषेध, जन्मपत्र सूर्यादि ग्रह समीक्षा इत्यादि। दूसरे समुल्लास में मुख्यतया माता-पिता, गुरु, आचार्य अपनी सन्तानों को किस प्रकार से धार्मिक, सुशील, सभ्य एवं विद्वान् बनावें, इस विषय को लेकर शतपथ ब्राह्मण का वचन '**मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद**' को लेकर कहा कि जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य उत्तम बनता है। वह कुल धन्य है, वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् है जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हो। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं कर सकता। इसीलिए (मातृमान्) अर्थात्'**प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्**' धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

इस उपदेश से हमें यह शिक्षा मिलती है कि यदि हम अपनी सन्तानों को धार्मिक, विद्वान्, चरित्रवान् बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम ये सभी गुण हमारे अन्दर होने आवश्यक हैं। संसार का नियम है जिसके पास जो होता है वही वह दूसरों को दे सकता है '**ददतु ददतु गालिं गालिवन्तो भवन्त:**' ठीक है आप गाली दे लीजिए क्योंकि आप गाली वाले हैं अर्थात् आपके पास ज्ञान नहीं है, गाली ही है।

अत: माता-पिता बच्चों को सिखावें कि किसके साथ कैसे वर्तना चाहिए। गुरु, अध्यापक, राजा, भृत्य आदि का मान्य कैसे करे, सभा में कैसे बैठे, आवश्यकता से अधिक न बोले। किस प्रकार का भोजन हो ताकि उसका शरीर स्वस्थ व पुष्ट रहे, मेधावी हो, संसार में यश व सम्पदा को प्राप्त होवे, यह ज्ञान माता-पिता-आचार्य सिखावें।

सम्यक् ज्ञान के साथ विपरीत ज्ञान के विषय में भी बतावें ताकि सन्तान किसी दुष्ट के जाल में न फंसे और कुमार्ग में न चले। सत्य व असत्य को समझकर व असत्य अज्ञान, झूठ को छोड़ता जावे और सत्य, ज्ञान को जीवन में धारण कर जीवन को समुन्नत बनावे।

- आचार्य कर्मवीर व दीपक आर्य

प्रतिक्रिया

१. परोपकारी के दिसम्बर प्रथम २०१० के अंक के कवर पेज दो पर प्रकाशित मेरे एक लेख में मैंने लिखा था-

ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल,
ईसा मेरा राम रमैया ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया ।

-एक बाला को यही भजन गाते सुनकर महात्मा मुन्शीरामादि ने कन्या गुरुकुल स्थापित करने का संकल्प किया था।

प्राध्यापक श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने परोपकारी के दिसम्बर प्रथम २०१३ के अंक में प्रकाशित अपने 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' स्तम्भ में मेरे उक्त कथन की अपनी स्वाभाविक शैली में समीक्षा की है और निष्कर्ष के रूप में बताया है कि- स्मृति दोष से मैं चूक कर गया हूँ, मैंने घटना की जांच किये बिना ऐसा लिख दिया है और घटना तो ठीक दी है परन्तु स्वरूप बदल गया जिससे कई भ्रम पैदा हो गये, इत्यादि।

अपने इस लेख में जिज्ञासु जी ने यह भी निर्देश किया है कि महात्मा मुन्शीराम जी ने गीत की उक्त पंक्तियाँ अपनी पुत्री वेदकुमारी जी के मुख से सुनकर कन्या महाविद्यालय की स्थापना की थी। उन्होंने यह भी लिखा है कि कन्या गुरुकुल देहरादून की स्थापना तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान के पश्चात् हुई थी।

पूज्य जिज्ञासु जी की उक्त बातें सत्य हैं। मैंने स्मृति के आधार पर ही उक्त वाक्य लिखा था। मगर 'कन्या गुरुकुल' से मेरा तात्पर्य 'कन्याओं के लिए विद्यालय' से ही था, किसी शिक्षा संस्थान विशेष के नाम से नहीं था। हिन्दी शब्दकोश में भी 'गुरुकुल' का अर्थ 'पाठशाला' अथवा 'विद्यालय' आदि दिये गये हैं।

अपनी आत्मकथा ''कल्याण मार्ग का पथिक'' में स्वयं स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लिखा है- ''निश्चय किया है कि अपनी '**पुत्री पाठशाला**' अवश्य खोलनी चाहिये। (पृ. १५८, सार्वदेशिक सभा का १९७८ का संस्करण) पुन: वहाँ आगे स्वामी जी ने अपने इस संकल्पित शिक्षा संस्थान के लिए 'आर्य पुत्री पाठशाला' शब्दों का प्रयोग भी किया है- 'कन्या महाविद्यालय' का नहीं। यह तो वैकल्पिक शिक्षा संस्थान खड़ा करने का संकल्प की वेला थी, उसके नामकरण की नहीं। अत: मुझे नहीं लगता कि मेरे विधान में कोई त्रुटि थी। यह भिन्न बात है कि आगे चलकर 'कन्या गुरुकुल' नामक संस्था भी स्थापित हुई।

दूसरी बात यह कि मैंने 'वेदकुमारी जी' के स्थान पर 'एक बाला' लिखा था। यह इसलिए कि लेख लिखते समय मैं सम्बन्धित पुस्तक लेकर घटना की जाँच नहीं कर पाया था और तब मुझे इस बात की निश्चयात्मक स्मृति भी नहीं थी कि जिसके मुख से उक्त गीत की पंक्तियाँ महात्मा

मुंशीराम जी ने सुनी थी उनका नाम वेदकुमारी था और वह उन्हीं की पुत्री थी। अत: मैंने सावधानीपूर्वक 'एक बाला' लिखा था। वेदकुमारी जी भी तो एक बाला ही थी। अत: मेरे लेख में कोई दोष तो नहीं था।

फिर भी मान्य जिज्ञासु जी ने समीक्षा की ही है तो आगे से और सावधानी रखूँगा और भ्रमादि का कोई अवकाश ही न रहे ऐसा लिखने का प्रयास करूँगा। जागृत करने के लिए जिज्ञासु जी को हार्दिक धन्यवाद।

- भावेश मेरजा, ८-१७, टाउनशिप, पो. नर्मदानगर, जि. भरुच, गुजरात-३९२०१५

२. परोपकारी पत्रिका का एक अंक छूट जाना भी मेरे लिये असह्य है। विचारोत्तेजक सम्पादकीय, तड़प-झड़प, विष्वङ् जी के योग विषयक लेख तथा शंका समाधान पठनीय एवं संग्रहणीय है। गुरुकुल व्यायामशाला, गौशाला सभी अपने श्रेष्ठतम रूप में हैं तथा यज्ञशाला का नवीनीकरण दर्शनीय है।

वैदिक धर्म की कीर्ति आप देश-विदेश में प्रसारित कर रहे हैं, वह वन्दनीय है।

- सत्यपालसिंह आर्य, एल-३०, शास्त्री नगर, मेरठ

३. सम्पादकीय ''उत्तराखण्ड में खण्ड-खण्ड हुआ पाखण्ड'' आदरणीय सम्पादक महोदय, आपका सम्पादकीय लेख न केवल अत्यन्त सामयिक परन्तु बड़ा महत्त्वपूर्ण है। विशेष रूप से आप का कथन ''मूर्ति पूजा या साकार उपासना का होना और इस के लाभ का प्रमाण है।'' बिना आवश्यकता के किसी वस्तु का उपयोग नहीं किया जा सकता। जब तक किसी वस्तु या काम से लाभ न हो कोई उस ओर प्रवृत्त नहीं होता। क्या मूर्ति पूजा से कोई लाभ नहीं? यदि लाभ नहीं होता तो लाखों-करोड़ों लोग मूर्ति पूजा क्यों करते और इतनी बड़ी संख्या में पण्डे-पुजारी, मौलवी, पादरी, सन्त, साधु इतने बड़े-बड़े मन्दिर, चर्च, समाधियाँ, दरगाह आदि बना कर क्यों बैठते? यह बात सच है कि मन्दिर में जाने वाला लाभ के लिए जाता है। उसे लाभ होता होगा तो ही वह दुबारा जाता है, बार-बार जाता है। मूर्तिपूजा से लाभ होता है वह मनुष्य को मूर्ति से नहीं होता, उस की पूजा प्रार्थना की क्रिया से होता है.... इत्यादि।''

यहाँ इस बात पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन का बड़ा समय गंगा के किनारे बसे उत्तर प्रदेश के कर्णवास, छलेसर, राजघाट इत्यादि क्षेत्र में प्रचार किया था। अनेकों सामन्तों-ठाकुरों को वैदिक धर्म की दीक्षा दी थी। इसी प्रकार भीलवाड़ा में शाहपुराधीश के साथ अत्यन्त निकट का सम्पर्क स्थापित किया था। यह एक अनुसन्धान का विषय है कि इन परिवारों में से लौट कर कितने अब पौराणिक बन गए हैं और ऐसा क्यों हुआ?

यह एक सत्य है कि मनुष्य का कार्य और उस कार्य के पीछे उस की वृत्ति और लगन ही उस के कर्म का फल प्रदान करती हैं। यहाँ एक बड़ा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त काम करता है। हर कार्य में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि अपनी हर योजना में सब का सहयोग, प्रोत्साहन, आशीर्वाद ले कर चलना चाहता है। आशीर्वाद चाहे माता-पिता, गुरुजनों का हो या मूर्ति में पूजित कल्पित देवता का, इन से काम करने वाले का मनोबल बढ़ा रहता है। स्टेटिक्स के सिद्धान्त के अनुसार अधिकांश व्यक्ति अपने श्रम, कार्य शक्ति, योग्यता और कौशल के परिणाम स्वरूप सफलता का लाभ तो होता ही है। परन्तु उन के मन में यह भावना भी दृढ़ होती है कि मूर्ति में पूजित देवता या किसी सिफारिश की कृपा से ही यह लाभ हुआ है। जिन को वांछित सफलता मिलती है, वे यही कहते हैं कि अमुक मूर्ति, देवी, बाबा के आशीर्वाद से, कृपा से उन्हें यह उपलब्धि हुई है। प्रार्थना और कृतज्ञता के अनुरूप धन, स्वर्ण इत्यादि के दान की भी कोई सीमा नहीं होती। उन्हें कभी दान के किए अपील भी नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार मूर्ति पूजा और अन्धविश्वास का प्रचार बढ़ावा पाता है।

आज के युग में समाज में व्यक्तिगत कामनाएँ बहुत बढ़ गई हैं। आर्यसमाज ने पञ्चमहायज्ञों और सोलह संस्कारों के भी व्यक्तिगत उपलब्धियों के बारे में विशेष लेखन, प्रचार नहीं किया है। आज समाज में निष्काम कर्म की ओर लोगों को आकर्षित करना लगभग असम्भव है। सकाम यज्ञ, उपासना इत्यादि विषयों पर वेदों में जो उपदेश मिलते हैं उन के अनुसार व्यक्ति का स्वयं विकास ही दैवीय कृपा से जीवन में उस की उपलब्धियों का कारण होता है।

व्यक्ति का विकास वेदों के स्वाध्याय, सत्संग, अग्निहोत्र, ध्यान, वेद मन्त्रों के अर्थ पूर्वक चिन्तन, उच्चारण द्वारा कैसे होता है इस पर मेरे विचार में आर्यसमाज में आजकल कम ध्यान दिया जा रहा है। वेदों में अपरा विद्या पर तो लगभग शून्य ही कार्य हुआ है। जब तक वेदों में अपरा विद्या का अनुसन्धान और प्रचार नहीं होगा, समाज को वेदों की ओर केवल श्रद्धा और भक्ति से कितना प्रभावित कर पाएंगे? आज की पाश्चात्य शिक्षा के कुतर्क के सामने श्रद्धा और आस्था की तो सब से पहली बलि चढ़ी है।

अधिकांश गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में भी वेद बहुत कम पढ़ाए जा रहे हैं। वेदों का प्रचार नहीं होगा तो आर्यसमाज कैसे आगे बढ़ेगा?

सुबोध कुमार

आर्यजगत् के समाचार

१. छात्रवृत्ति– स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वैदिक प्रचार ट्रस्ट बी.८ए, डी.डी.ए. जनता फ्लैट, टैगोर गार्डन विस्तार, नई दिल्ली–२७ तथा उप कार्यालय गुरुकुल गदपुणी, वल्लभगढ़, फरीदाबाद द्वारा छात्रवृत्ति के रूप में २०१२–१३ के लिए दान दिया गया और २०१३–१४ के लिए प्रार्थना–पत्र मांगने की अपील की।

१. कन्या गुरुकुल हसनपुर (पलवल) दस हजार
२. कन्या गुरुकुल अलीयाबाद (आन्ध्र प्रदेश) दस हजार
३. कन्या गुरुकुल आमसेना (उड़ीसा) दस हजार
४. कन्या गुरुकुल दाधिया (हरियाणा) दस हजार
५. कन्या गुरुकुल शिवगंज (राजस्थान) दस हजार
६. कन्या गुरुकुल जसात (हरियाणा) दस हजार
७. गुरुकुल पूठ (उत्तर प्रदेश) दस हजार
८. गुरुकुल गदपुरी (हरियाणा) ग्यारह हजार
९. आर्ष गुरुकुल दखोला (मथुरा) दस हजार
१०. परोपकारिणी सभा, अजमेर (राजस्थान) ग्यारह हजार
११. सत्यार्थ प्रकाश बांटने हेतु अजमेर प्रकाशन (राजस्थान) ग्यारह हजार

२. विदेश में प्रवचन– दक्षिण आफ्रीका के डरबन में वर्ल्ड वैदिक कान्फ्रेंस में आचार्य आनन्द पुरुषार्थी ने ३० नवम्बर २०१३ को डरबन सिटी हॉल के विशाल जन समूह के बीच अथर्ववेद के एक मन्त्र का सहारा लेते हुए व्याख्यान दिया। अमेरिका, केन्या, नाइजीरिया, नीदरलैण्ड, यूगांडा, सूरीनाम, मॉरीशस आदि अनेक देशों के स्कॉलर शोध पत्रों का वाचन अलग सत्रों में कर रहे थे। उद्घाटन समारोह में डरबन सिटी के मेयर श्री जेम्स नेक्सुमालो भी आये थे। भारत के महामहीम राजदूत श्री वीरेन्द्र वर्मा इण्डियन हाई कमिश्न तथा श्री वी.के. शर्मा इण्डियन कांसूलेट जनरल ऑफ इण्डिया को आचार्य आनन्द पुरुषार्थी ने व्यक्तिगत मिलकर वैदिक साहित्य भेंट किया। एक दिन महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध बहुत बड़ी रैली निकाली गई। इसमें स्वामी रामदेव जी के गुरु सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष आचार्य बलदेव जी सहित सैकड़ों लोग सम्मिलित हुए।

३. सम्मानित– दीपावली महोत्सव एवं महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस के शुभावसर पर आर्य सभा मॉरीशस ने श्री सोनालाल नेमधारी जी को वैदिक धर्म, संस्कृति एवं हिन्दी भाषा के स्तुत्य प्रचार–प्रसार के लिए आर्य भूषण की उपाधि से सहर्ष सम्मानित किया है।

४. वेद प्रचार– कोटा महानगर के राष्ट्रीय मेला दशहरा २०१३ में आर्यसमाज कोटा द्वारा आयोजित महर्षि दयानन्द जीवन दर्शन, वैदिक साहित्य एवं सामाजिक जागरुकता के पोस्टरों की भव्य प्रदर्शनी का आयोजन दिनांक १७ अक्टूबर से १ नवम्बर २०१३ (१५ दिवसीय) किया गया। समापन समारोह में कोटा नगर के गणमान्य आर्यजन उपस्थित हुए।

५. उद्‍बोधन– अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन दिनांक २८ नवम्बर से १ दिसम्बर २०१३ तक दक्षिण आफ्रीका के डरबन महानगर में आयोजित हुआ जिसमें १ दिसम्बर को कार्यक्रम का एक सत्र चिकित्सा विषय पर आधारित था। उक्त सत्र में लगभग आठ देशों के स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने डरबन के सिटी हॉल में सभा को सम्बोधित किया। चिकित्सा सत्र में भारत से कोटा राजस्थान के प्रतिनिधि श्री अर्जुनदेव चड्ढा को वक्तव्य के लिये आमन्त्रित किया गया।

६. वैदिक धर्म का प्रचार– १७ नवम्बर को आर्यसमाज यमलार्जुनपुर, बहराईच, उ.प्र. के तत्त्वावधान में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर सरयू नदी के तट पर ग्रामीण अंचल में लगने वाला प्राचीन कटका मेला में कैम्प लगा कर वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार किया गया।

७. वेद प्रचार– आर्यसमाज शास्त्री नगर, मेरठ में वेद प्रचार समारोह दिनांक ७ से १० नवम्बर २०१३ तक बड़ी धूमधाम से एवं सफलतापूर्वक मनाया गया। इसमें मेरठ महानगर के सभी आर्यसमाजों के सदस्यों ने उपस्थित होकर धर्म/ज्ञान लाभ उठाया। इस समारोह में विदुषी डॉ. निष्ठा जी विद्यालंकार (कानपुर), समारोह के मुख्य अतिथि श्रीयुत् दयानन्द शर्मा को प्रतीक चिह्न भेंट कर सम्मानित किया गया। जिन बालक/बालिकाओं ने मन्त्र सुनायें उन्हें पुरस्कृत किया गया। जो कमजोर वर्ग के बच्चे आर्यसमाज में पढ़ते हैं उन्हें भी पुरस्कृत किया गया तथा सिलाई प्रशिक्षार्थिनियों को भी पुरस्कृत किया गया।

८. गर्म जर्सियाँ वितरण– सामाजिक सेवा कार्यों के प्रति आर्यसमाज सदैव अपनी अहम भूमिका निभाता रहा है। विशेषकर जरूरतमन्द, असहाय, निर्धनों व छात्र–छात्राओं में आवश्यकतानुसार सामग्री वितरित करके। उक्त विचार आर्यसमाज कोटा के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय तलवंडी, कोटा में आयोजित कार्यक्रम में व्यक्त किये। इस अवसर पर इस स्कूल की जरूरतमन्द छात्राओं को स्कूल ड्रेस की गर्म जर्सियाँ भी वितरित की गई।